महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६१ **अंक** : २३
दयानन्दाब्दः १९५
विक्रम संवत्: मार्गशीर्ष शुक्ल २०७६
कलि संवत्: ५१२०
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

दिसम्बर प्रथम २०१९

अनुक्रम

०१. वेदों में श्रीराम आदि की कथा...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-४२	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०९
०४. सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर...	डॉ. रामप्रकाश वर्णी	१४
०५. ईश्वर के अनेक नाम	पं. हरिशरण	१६
०६. चौधरी छोटूराम, अम्बेडकर....	गुरप्रीत चहल	२१
०७. हिन्दुओं की भावी पीढ़ी का भविष्य	स्वामी ओमानन्द	२३
०८. राम के मार्ग पर चलें या कृष्ण के	संजय मोहन मित्तल	२८
०९. आर्यजगत् के समाचार		२९
१०. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३०
११. संस्था की ओर से...		३१
१२. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वेदों में श्रीराम आदि की कथा: एक तर्कहीन भ्रान्त धारणा-२

वेदों में रामकथा के अन्वेषकों के बचकाने तर्क-प्रमाण- उक्त कपोलकल्पित धारणा के प्रवर्तक नीलकण्ठ सूरि हैं, जो लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व हुए हैं। उन्होंने इधर-उधर से ऋग्वेद के डेढ़ सौ मन्त्रों का '**मन्त्र-रामायण**' के नाम से संकलन करके उन पर श्रीराम कथा परक भाष्य लिखा। उसके पश्चात् १३० मन्त्रों का एक और संकलन '**मन्त्र-भागवत**' नाम से किया और उस पर भी श्रीकृष्ण कथात्मक भाष्य लिखा। उसके बाद छुटपुट व्याख्याएँ लिखने वाले और इनका समर्थन करने वाले कई व्यक्ति हुए हैं। 'कल्याण' पत्रिका में इसके समर्थन में प्राय: लेख निकलते रहते हैं। उनकी वेदों में रामकथा के पक्ष में कुछ युक्तियाँ इस प्रकार हैं-

१. ''भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण का वर्णन वेदों में है। इस सृष्टि के पहले कल्पों में श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि के जो चरित्र हुए हैं, उनका संकेत सृष्टि के आदि में अवतरित हुए वेदों ने किया है। इसमें प्रमाण देते हैं-

''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्व:।''

(ऋग्. १०.१९०.३)।''

२. वे कहते हैं कि ''वेदमन्त्रों में श्रीराम और उनके पूर्वजों का स्पष्ट वर्णन है। जैसे-ऋग् ५.५४.९ में रघु का; ३.५३.९ में सुदास का; अथर्ववेद १९.३९.९ में इक्ष्वाकु का। इसी प्रकार रामकथा से सम्बद्ध घटनाओं का भी उल्लेख कहते हैं, जैसे- अथर्व. ४.६.१ में दशानन रावण का, ऋग् १०.३.३ में सीताहरण और उसकी अग्नि परीक्षा का; ऋग् १०.९३.१४ में राम के राज्याभिषेक का; ऋग्. १.१२६.४ में दशरथ के यज्ञ का; अथर्व. १०.२.२८-३३ में अयोध्या नगरी का; अथर्व. ३.१७.४-९ में तथा ऋग्. ४.५७.६-७ में सीता का वर्णन है।''

इन तर्क-प्रमाणों का उत्तर और उन पर आपत्तियाँ इस प्रकार हैं-

१. वेदों में रामकथा-अन्वेषकों की पहली धारणा कितनी बचकानी और निराधार है, इसका ज्ञान सभी पाठकों को सरलता से हो गया होगा। उद्धृत मन्त्र में सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष आदि के यथापूर्व निर्माण का कथन है, मानव-इतिहास या मानव-जीवन का नहीं। यदि यह मान लिया जावे कि सभी मनुष्य पूर्वकल्पवत् यथाक्रम से यथावत् जन्म लेते हैं और सभी क्रियाएँ यथावत् करते हैं तो इससे तो भारतीय दर्शन और स्वयं वेदों की वह व्यवस्था ही ध्वस्त हो जायेगी जिसमें कर्मों के आधार पर पुनर्जन्मों एवं मुक्ति-प्राप्ति आदि का उल्लेख है। यदि यथावत् पैदा होकर यथावत् और घटनाएँ होनी हैं, तो कर्म करने की तथा अच्छे-बुरे कर्म में अन्तर रखने की आवश्यकता ही कहाँ रह जायेगी? इस मनघड़न्त व्याख्या पद्धति के आधार पर तो संसार को एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया में आबद्ध मानना पड़ेगा, उसमें कल्प बदलने पर न व्यक्ति बदलेगा, न वस्तु; यहाँ तक कि मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषि भी वही रहेंगे। कोई नया ऋषि मन्त्रार्थद्रष्टा नहीं बन सकता! यह भी मानना पड़ेगा कि इस कल्प के रामकथा-अन्वेषक वही कार्य कर रहे हैं, जो उन्होंने पूर्वकल्प में किया था! इस युक्ति में अनवस्था दोष भी आता है। पूर्व कल्प की कोई सीमा या निश्चय नहीं हो सकता कि कौनसे पूर्वकल्प में यह कथा घटित हुई थी।

वस्तुत: यह व्याख्या रामकथा-अन्वेषकों ने पौराणिक वेंकटमाधव, सायण आदि वेदभाष्यकारों की शैली से ग्रहण की है। इन भाष्यकारों ने वेदमन्त्रों में पठित शुन:शेप, पुरूरवा, उर्वशी, वसिष्ठ आदि नामों को देखकर उनकी इतिहासपरक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। जब मन्त्रों में पठित प्रथम-पुरुषात्मक प्रयोगों की संगति सूक्त पर उल्लिखित ऋषि से वे नहीं लगा सके, तो उन्होंने यह बचकानी युक्ति देकर पीछा छुड़ा लिया कि ''यह प्रयोग पूर्वकल्प की अपेक्षा से है। पूर्वकल्प में जो शुन:शेप आदि ऋषि हुए हैं, उनका वर्णन इस कल्प के हम शुन:शेप आदि ऋषि कर रहे हैं।'' जब कि वस्तुस्थिति यह है कि पौराणिक भाष्यकारों ने असंगत मन्त्रार्थ शैली को ग्रहण कर लिया। जब वे उसका निर्वाह नहीं कर सके तो उन्हें उक्त दुर्बल, बचकानी और अविश्वसनीय युक्ति उपस्थित करनी पड़ी। उनके अनुकरण में रामकथा-अन्वेषक भी इस दुर्बल

युक्ति के भटकाव में आ गये हैं।

२. दूसरी युक्ति के विषय में लेख के प्रारम्भ में यह कहा जा चुका है कि ये लोग किसी वेद में, कहीं किसी मन्त्र में रामकथा से मिलता-जुलता शब्द देखते हैं, तो वहीं इन्हें रामकथा का आभास होने लगता है। नाम मिल जाने पर अन्य पदों के साथ खींचातानी करके मनचाहा अर्थ निकालने का प्रयास करते हैं। देवता, प्रकरण आदि की ओर ये किंचित्मात्र भी ध्यान नहीं देते। पूर्व उद्धृत सभी मन्त्र ऐसे हैं, जिनमें नाम के अतिरिक्त उनसे सम्बद्ध कोई बात नहीं है। न उनमें कथातत्त्व है, न रामकथा से सम्बद्ध उल्लेख। जैसे ऋग्वेद का उक्त सीता सूक्त कृषि वर्णन का सूक्त है, न कि रामपत्नी सीता का इतिहास। वहाँ सीता का अर्थ **'हल से बनी रेखा'** (खूड) है, जनकपुत्री सीता नहीं, पुनरपि इन व्याख्याकारों ने उन मन्त्रों को रामपत्नी सीता के अर्थ में ढ़ीठतापूर्वक घसीटा है। इसी प्रकार अन्य मन्त्र हैं। स्थानाभाव से उनका विवेचन यहाँ नहीं किया जा सकता।

यहाँ रामकथा-अन्वेषकों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदों को यदि रामकथा का वर्णन अभीष्ट था, तो किसी एक स्थान पर या किसी एक सूक्त में सरल शब्दों में उसका वर्णन क्यों नहीं कर दिया? न आपको इधर-उधर से मन्त्र इकट्ठे करने पड़ते और न व्याख्या करने के लिए इतनी कसरत करनी पड़ती! अब तो नीलकण्ठ तथा उसके अनुयायियों द्वारा प्रस्तुत 'वेदों में रामकथा' कोई कथा ही प्रतीत नहीं होती, अपितु 'भानमती का पिटारा' लगता है।

यह भी विस्मय की बात है कि नीलकण्ठ को वह बात सूझी है, जो स्वयं राम और रामकथा प्रणेता महर्षि वाल्मीकि आदि को भी नहीं सूझ सकी! वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर राम द्वारा वेद-वेदांग पढ़ने का तथा वेदज्ञ होने का उल्लेख है। क्या वे अपनी ही कथा पढ़ते थे? यदि हाँ, तो उन्होंने कहीं भी नहीं कहा कि मैं अपनी कथा का विद्वान् हूँ और पूर्वकल्प में भी मैं और मेरे पूर्वज थे। ऋषि वाल्मीकि ने संस्कृत में रामायण लिखी, महर्षि व्यास ने महाभारत में **'रामोपाख्यान'** वर्णित किये, किन्तु उन्होंने भी यह बात कहीं नहीं कही कि यह कथा वेदमन्त्रों में भी आती है। जब रामकथा के आदिप्रणेता ऋषि ही इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते तो परवर्ती रामकथा-अन्वेषक भ्रान्ति क्यों फैला रहे हैं? क्या वे वाल्मीकि से भी बढ़कर राम के श्रद्धालु और पूर्वकल्पज्ञ पैदा हो गये हैं?

सभी लोग हुनमान् को राम का अतिशय श्रद्धालु सेवक मानते हैं। वाल्मीकि ने भी राम के श्रद्धालु सहयोगी के रूप में हनुमान् का चित्रण किया है। रामायण के अनुसार हनुमान् सभी वेदों और वेदांगों का ज्ञाता विद्वान् था। किन्तु उसे भी इस बात का ज्ञान नहीं हो सका कि उसके श्रद्धेय का वर्णन वेदों में है! नहीं तो वह राम को अवश्य बतला देता कि 'वेदों के वर्णन के अनुसार, दशानन रावण ने सीता का हरण किया है।' तब उसे समुद्रलंघन का श्रम नहीं करना पड़ता। राम को वन-वन न भटकना पड़ता। सुग्रीव को अपनी चुनी हुई गुप्तचर सेना चारों दिशाओं में न भेजनी पड़ती। पश्चात्ताप की बात बस इतनी ही रह गयी है कि जब सारी रामकथा घटित हो चुकी, उसके बहुत वर्षों बाद, अतिशय श्रद्धालु हनुमान् के कलियुगी अवतार को यह तत्त्व ज्ञान हुआ है कि यह कथा तो पहले से ही वेदों में विद्यमान थी! अच्छा होता, राम और वास्तविक हनुमान् को भी यह तत्त्वज्ञान हो जाता, कम से कम वे सावधान हो जाते और उन्हें वनवास और सीताहरण जैसे बहुत-सारे कष्ट न उठाने पड़ते!

यह बात हस्तामलकवत् स्पष्ट और प्रतिष्ठित है कि वेद सृष्टि के आदि में प्रकट हुए हैं। पाश्चात्य विद्वान् भी इस बात को एकमत से स्वीकार करते हैं कि **'ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है।'** श्रीराम त्रेतायुग में हुए हैं, अतः वेदों में राम की कथा सम्भव नहीं है; किन्तु फिर भी रामकथा-अन्वेषक दुराग्रह पर अड़कर विवेकशून्यता प्रदर्शित कर रहे हैं और अपनी तथा मन्त्रार्थों की हास्यास्पद स्थिति बना रहे हैं!

प्राचीन वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाङ्मय को, इस प्रकार की प्रवृत्ति वाले लोगों ने, पहले ही ऊलजलूल कल्पनाओं, दैवी प्रसंगों, अवतारों, प्रक्षेपों और चमत्कारों से ऐसा विकृत और अविश्वसनीय बना रखा है कि कोई भी तटस्थ बुद्धिजीवी, विशेषतः वैज्ञानिक युग के व्यक्ति, सैंकड़ों समाधान और स्पष्टीकरण देने के उपरान्त भी उसकी ऐतिहासिकता, महत्ता एवं उपादेयता को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं होते। ऐसे ही प्रक्षेपों और काल्पनिक प्रसंगों ने रामायण, महाभारत जैसे अपूर्व ऐतिहासिक काव्यों को इस स्थिति में ला खड़ा कर दिया है कि एक बहुत बड़ा वर्ग उन्हें काल्पनिक घोषित कर रहा है। उसके उत्तरदायी वेदमन्त्रों के अनर्थकर्त्ता हैं।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

मृत्यु सूक्त-४२

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

हम ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त के सातवें मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। इसका देवता पितृमेधः है। पितृमेध शब्द वैसे तो अन्त्येष्टि के लिए आता है। 'पितृ' अर्थात् जो बड़े हैं उनको 'मेध' अर्थात् अपवित्रता से पवित्रता की स्थिति में पहुँचा देना। इस पितृमेध में किसकी भागीदारी कैसी है, जो जीवित है वह कैसा रहे? तो कहा कि यदि पति का देहान्त हो गया है तो भी पत्नी को, जो गया उसको छोड़ करके, जो है उसकी बात करनी चाहिए- परिवार की, सन्तान की और यदि आवश्यकता हो तो सन्तान प्राप्ति की भी। इसीलिए यहाँ पर ये सारे विशेषण दिए हैं।

हम पिछले प्रसंग में यह समझा रहे थे कि वैदिक साहित्य में महिला की श्रेष्ठता, बराबरी कैसे बतायी गयी है। तो हम एक मन्त्र की चर्चा कर रहे थे-

मम व्रते ते हृदयं दधामि,
मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व
प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।।

विवाह संस्कार में वर-वधू जब यज्ञकुण्ड पर बैठे होते हैं तो पुरोहित उनसे एक प्रतिज्ञा करवाता है और एक-दूसरे के हृदय पर हाथ रखकर वह प्रतिज्ञा करते हैं। हृदय पर हाथ रखता है अर्थात् इस बात का महत्त्व इतना है, यह बात इतनी गहरी है कि दिल में रखने योग्य है, हृदय पर लिख लेने योग्य है। अर्थात् जो चीज हम हृदय पर अंकित करते हैं, दिल पर लिखते हैं, दिल में गाँठ बाँधते हैं, वह चीज हम चाहते हैं कि न भूलें, हमको वह सदा ही याद रहे, हम सदा ही उसको ध्यान में रखकर बात करें। यह मन्त्र हृदय पर हाथ रखकर बोला जा रहा है, इससे इस मन्त्र का महत्त्व आपको पता चलेगा, जो बात कही जा रही है इसका मूल्य आपको पता चलेगा। **'मम व्रते ते हृदयं दधामि'**- वर वधू से कह रहा है और वधू वर से कह रही है- **'ते हृदयं मम व्रते दधामि'**, हृदय तुम्हारा है, व्रत मेरे हैं। मेरे व्रतों को तेरे हृदय में रहना चाहिए। कैसे रहेंगे? ज्ञान से रहेंगे। व्रतों की जानकारी उसको होनी चाहिए। मेरे व्रतों का तेरे हृदय में वास होना चाहिए और तेरे व्रतों का मेरे हृदय में वास होना चाहिए। यह कितनी मनोवैज्ञानिक बात है, कितनी व्यावहारिक है। यदि हम किसी के बारे में ठीक-ठीक जानते हैं, तो उससे हम व्यवहार भी ठीक कर सकते हैं।

जैसे हमको पता चलता है कि कोई व्यक्ति बीमार है, तो हम उसके भोजन, विश्राम, औषध की व्यवस्था वैसी ही करते हैं। जो बालक है उसकी व्यवस्था वैसी ही करते हैं, जो प्रौढ़ है उसकी वैसी करते हैं, क्योंकि जानते हैं इसलिए वैसी करते हैं। यह भिन्नता केवल तब ला सकते हैं जब हमें उनका यथार्थ पता हो। इसीलिए वर-वधू कह रहे हैं कि हम जीवन में एक-दूसरे की इच्छा को पूरा कर सकें, एक-दूसरे के काम आ सकें, तो हमें यह पता होना चाहिए कि एक-दूसरे की आवश्यकता क्या है, हमारे नियम क्या हैं, हमारी अपेक्षायें क्या हैं, हमारी दिनचर्या क्या है, हमारे कार्य और कार्य शैली क्या है। यदि इन सबकी हमको जानकारी होती है तो व्यवहार दूसरे के अनुकूल हो जाता है और दूसरे का व्यवहार भी हमारे अनुकूल हो जाता

है, क्योंकि दोनों को सामञ्जस्य करना है, समन्वय करना है।

समन्वय होगा कैसे? यदि पता ही न हो तो समन्वय कैसे होगा? पति को कार्यालय जाना है, पत्नी स्नानागार में है। वह प्रतीक्षा करे या भूखा चला चला जाए? ऐसे नहीं चल सकता, क्योंकि व्रतों का पता नहीं है। यदि व्रतों का पता है कि परिवार के अमुक सदस्य को इतने बजे जाना है, बच्चे को स्कूल जाना है, पति को कार्यालय जाना है, सेवक का, सेविका का आने का क्या समय है, तदनुसार हमारे सारे कार्य होंगे। पति को पता है, आज पत्नी को कहाँ जाना है, पत्नी की क्या आवश्यकतायें हैं, आज उसे किस सामान की जरूरत है तो व्यवस्था उसके अनुकूल कर पायेगा। इसलिये वेद कहता है कि

मम व्रते ते हृदयं दधामि

मेरा व्रत है तेरा हृदय है। वर-वधू कहते हैं कि तुझे पता है मुझे क्या करना है, मुझे पता है कि तुझे क्या करना है। जब दोनों को एक-दूसरे का पता है तो फिर गड़बड़ का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। शिकायत का अवसर ही नहीं आता। इसका उदाहरण भी मन्त्र साथ ही दे रहा है। यदि एक-दूसरे के विचार, एक-दूसरे की बात एक-दूसरे को पता है, तो होगा क्या? तो कहता है-

मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।

यह उसका परिणाम है कि मुझे यदि आपके बारे में पूर्ण जानकारी है, तो मेरा व्यवहार आपके प्रति उतना ही अच्छा होगा। वहाँ कोई भूल नहीं होगी। कोई बड़ा है उसे छोटा समझ लिया, सम्बन्ध में किसी बड़े व्यक्ति से आपने उपेक्षा के भाव से व्यवहार किया तो सम्बन्ध बिगड़ जायेंगे। इसलिए कहा है कि ऐसा करने से

मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु

हमारा जो चित्त है, अनुचित्त हो जायेगा, अर्थात् एक-दूसरे के पीछे चलने वाला हो जायेगा, एक-दूसरे के अनुकूल चलने वाला हो जायेगा।

संस्कृत में 'अनु' शब्द साथ-साथ के लिए आता है और-कूल कहते हैं किनारे को, अनुकूल अर्थात् किनारे के साथ-साथ, पानी जिस ओर बह रहा है, उस ओर। प्रतिकूल अर्थात् उससे उल्टा। इसी तरह से हम कहते हैं अनुलोम जैसे हमारे शरीर के लोम हैं उस दिशा में। प्रतिलोम अर्थात् लोम से उल्टा। इसी तरह अनुचित्तम् अर्थात् चित्त जो है 'अनु' उसके अनुकूल, पीछे-पीछे चलने वाला हो जाये। मैं उसके हिसाब से सोचूँगा, वह मेरे हिसाब से सोचे। यह होगा कैसे? व्रतों का पता कैसे लगेगा? रोज करते हुए देखेंगे तो बहुत दिन लग जायेंगे, बड़ा समय लग जाएगा। इसका बहुत ही आसान तरीका है-

मम वाचम् एकमना जुषस्व

यदि आप समाज में देखो तो इस छोटे से वाक्य का ही निर्वाह नहीं हो पा रहा है, बस यही समाज की कठिनाई है। हमें किसी को सुनकर सन्तोष नहीं होता, हमें कहने की आदत है। हम सोचते हैं सारे लोग हमारी सुनें, मेरी ही सुनें, मैं ही बोलूँ। दूसरे की सुनने का न तो मेरे पास सामर्थ्य है, न योग्यता है। सुनते भी हैं तो लापरवाही से सुनते हैं, उपेक्षा के भाव से सुनते हैं। जब कोई व्यक्ति आपकी बात सुन रहा है तो पता चल जाता है कि आप कैसा सुन रहे हैं। आप ध्यान से सुन रहे हैं या बिना ध्यान के सुन रहे हैं या फिर नहीं ही सुन रहे हैं, सुनने में उपेक्षा के भाव से सुन रहे हैं, ये सारी बातें आपके शरीर की चेष्टाओं से पता लगती है।

इसमें एक रोचक तथ्य याद रखने लायक है-कान का हमें पता नहीं चलता कि वह किधर की सुन रहा है, लेकिन आँख का हमें पता चलता है, किधर देख रही है। यह पता चल जाता है कि यह तुम्हें देख रहा है या किसी दूसरे को देख रहा है और कान का पता नहीं चलता। लेकिन कान का भी चलता है, क्योंकि जिधर आँखें होती हैं, कान भी उधर ही होता है। जब आप किसी श्रोता को सुन रहे होते हैं तो श्रोता पर आपकी दृष्टि होती है, इसका अभिप्राय होता है कि आपके कान भी श्रोता के साथ हैं और यदि एक क्षण के लिए यह मान लिया जाए कि आपका ध्यान सुनने में नहीं है तो आप निश्चित समझिए कि आपकी दृष्टि भी वहाँ नहीं होगी। एक अध्यापक को कैसे पता चलता है कि विद्यार्थी सुन रहा है या नहीं सुन रहा है? वह कान से नहीं पहचानता, वह तो आपकी दृष्टि से पहचानता है। आप यदि अध्यापक की ओर नहीं देख रहे हैं, तो आप अध्यापक को नहीं सुन रहे होते, आपका

ध्यान कहीं और होता है। जैसे ही आपका ध्यान कहीं और जाता है, वैसे ही आपकी आँखें भी वहाँ से हट जाती हैं।

इसलिए यहाँ एक सूत्र दिया है-

मम वाचम् एकमना जुषस्व

मैं जब बोलूँ तो तुम्हें पूरे ध्यान से सुनना चाहिए, गंभीरता से सुनना चाहिए। तुम बोलो तो मुझे सुनना चाहिए और यदि ऐसा हम कर सकते हैं तो हमें इससे दो लाभ होंगे- जब आप किसी दूसरे की सुनते हैं तब आप अपने आप नम्र हो जाते हैं, आपका अहंकार स्वत: ही नष्ट हो जाता है। जब आप अहंकार से जुड़े रहते हैं, तब आप दूसरे की सुनना ही नहीं चाहते हैं, दूसरे को बोलने नहीं देते। आप अपनी ही बोलना चाहते हैं और यदि हमें थोड़ा भी अभ्यास हो जाए दूसरे को सुनने का तो उसका एक लाभ तो यह होता है कि हमारे अन्दर धैर्य आता है। हम बोलते हैं तो हमारे अन्दर धैर्य नहीं होता है। सुनने के लिए धैर्य चाहिए और बोलने के लिए अधीरता। अधीरता में व्यक्ति जल्दी-जल्दी बोलता है, कुछ भी बोलता है। व्यक्ति धैर्य रखता है तो सुनता है, समझता है, सोचकर बोलता है।

यहाँ पर वाणी को सुनना है और कैसे सुनना है- एकमना, एकाग्रता के साथ, ध्यान देकर। तो ध्यान देकर सुनने से क्या होगा? बात धैर्य से सुनी जायेगी, शान्त होकर सुनी जाएगी, पूरी तरह सुनी जाएगी और मेरे अन्दर जो उतावलापन है, मेरे अन्दर जो अहंकार है, मेरे अन्दर जो जबरदस्ती है, वह अपने आप ही दूर हो जाएगी और मुझे किसी तरह का सन्देह नहीं होगा, यह सन्देह की निवृत्ति का बहुत अच्छा अवसर होता है। जब गम्भीरता से सुनता है तो उसके अन्दर बात स्पष्ट होती है, वह पूरी बात सुनता है। जब व्यक्ति किसी को सुनेगा, तब शान्त भी होगा, सहज भी होगा और उसको स्मरण भी होगा।

यह सिद्धान्त, जहाँ भी दो व्यक्ति हैं, चाहे वे गुरु-शिष्य हैं, चाहे पति-पत्नी हैं, स्वामी-सेवक हैं या दो मित्र हैं-सब जगह लागू होगा। हमारे जितने भी दुनिया के सम्बन्ध हैं वे दो के बीच में होते हैं और उन दो के बीच में जो दुविधा है, असुविधा है, उसका और कोई कारण नहीं है, उसका एक ही कारण है कि हम एकाग्रता के साथ, संकल्प के साथ, ध्यान से एक-दूसरे को सुनने के लिए संकल्पबद्ध नहीं होते। हमारा स्वभाव नहीं बनता, हमारा स्वभाव जल्दबाजी का होता है, उतावलेपन का होता है, बिना सोचे करने का होता है, बिना सुने जवाब देने का होता है। तो ऐसी स्थिति में हमारे संवाद में गड़बड़ी हो जाती है। हमारा संवाद तभी अच्छा बन सकता है, तभी अच्छा हो सकता है जब यह संवाद 'एकमना जुषस्व' हो और यदि एकमना जुषस्व होगा तब मेरे अन्दर जो भी तुम्हारा कहा हुआ है वह सहजता से प्रविष्ट हो जायेगा और इतना होने पर भी एक प्रार्थना की गयी है- प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् कि प्रजापति मुझे इस योग्य बनावे, तुम्हारी ओर नियुक्त करे, तुम्हारे में मेरी रुचि पैदा करे, तुम्हारे प्रति मेरे अन्दर सहानुभूति, संवेदना रखे। तो यह कब पैदा होगी? तब, जब हम एक-दूसरे के व्रतों को जानेंगे। और व्रतों को कब जानेंगे? जब हम एक-दूसरे की बात को सुनेंगे, ध्यान से सुनेंगे और जब हम किसी बात को ध्यान से सुनेंगे, तो फिर उसका जो परिणाम होगा-

मम चित्तमनुचित्तम् ते अस्तु

मेरा जो मन है, बुद्धि है, सोच है, वह 'अनुचित्तम्' तुम्हारे प्रति अनुराग युक्त हो जाएगा, समर्थन, सहयोग की भावना वाला हो जाएगा। इसलिए यहाँ पर दोनों को समानता के आधार पर बराबर मानकर एक ही बात समझायी गयी है कि दोनों ही एक-दूसरे की बात को यदि ध्यान से सुनेंगे, समझेंगे, याद रखेंगे तो उनके अन्दर जो संवाद की स्थिति है वह कभी विवाद में नहीं बदलेगी, विकार में नहीं बदलेगी और उसके कारण कोई विग्रह पैदा नहीं होगा। इस दृष्टि से यदि आप इस मन्त्र पर विचार करते हैं तो आप देखेंगे कि यहाँ दोनों के लिए कितने सहज भाव से एक ही उपदेश दिया है, जो समानता का सबसे बड़ा प्रतीक है।

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

श्री जितेन्द्र कुमार गुप्त की साहित्य सेवा- आर्यसमाज के १४४ वर्ष के इतिहास में अनेक समाजसेवकों ने किसी सभा-संस्था के पद पर न रहते हुये भी समाज-सेवा का शानदार इतिहास रचकर दूसरों के सामने एक उदाहरण रखा है। इस गये, बीते युग में हमारे सामने एक आर्यपुरुष ने इससे भी आगे बढ़कर एक सर्वथा नया कीर्तिमान स्थापित करके समाजसेवकों को एक नई दिशा दी है। यह सज्जन हैं बठिण्डा (पंजाब) निवासी श्री जितेन्द्रकुमार जी वकील। आप रामाँमण्डी के सुविख्यात संघर्षशील धर्मयोद्धा श्री महाशय गेंदाराम जी के वंशज हैं। सन् १९९५ से थोड़ा पहले श्रीयुत जितेन्द्रकुमार बठिण्डा समाज के मन्त्री चुने गये। स्वल्पकाल में आपने समाज में नवजीवन का संचार कर दिया।

आर्यसमाज में साहित्य बिक्री-विभाग आरम्भ किया गया। समाज के सत्संगों में उपस्थिति बढ़ने लगी। अन्तरंग की बैठकों में समाज के कोष से खान-पान पार्टियाँ बन्द कर दी गईं। आप पहले भी कन्या गुरुकुलों में और सामाजिक कार्यों के लिये अपनी आय का एक भाग नियमपूर्वक दान दिया करते थे। आपके पिताश्री ने इन्हें कहा, ''ऐसे परोपकार के, धर्म के कार्यों में रुचि लेते रहो। समाज के पद को ग्रहण मत करें। ''आपने एकदम मन्त्री पद छोड़ दिया। मैंने समझा कोई विवाद हो गया होगा। इनके हटते ही समाज पुनः निर्जीव हो गया।''

एक दिन किसी को भेजकर मुझे कुछ विचार करने के लिये बुलवाया। मैंने समझा समाज के विवाद में मेरा सहयोग चाहते होंगे। मैंने जाने से कुछ संकोच किया तो जो बुलाने आया उसने कहा, ''आप एक बार अवश्य मिलिये। धर्म-प्रचार, धर्म-रक्षा के कार्यों में आपका मार्गदर्शन व कुछ सहयोग चाहिये।'' मैं तुरन्त उस बन्धु के साथ श्री जितेन्द्र जी के घर पहुँचा।

आपके पास उस समय कई बड़े-बड़े सेठ अपने-अपने आयकर के केसों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने आये थे। आपने उन सबको यह कहकर विदा कर दिया कि अब मैं एक सामाजिक विषय पर 'जिज्ञासु' जी से कुछ विचार-विमर्श करूँगा। आप दो घण्टे के पश्चात् मिलना। तब आपने कहा, ''मैं अब समाज-सेवा, धर्म-प्रचार के लिये सभा-संस्थाओं के झंझटों से परे रहकर अपनी आय का एक भाग यथापूर्व एक योजना बनाकर एक ठोस कार्य करना चाहता हूँ। मैं २०-२५ पठनीय और खोजपूर्ण पुस्तकें छपवाकर आपकी सहायता से उनको सुशिक्षित जनता तक पहुँचाना चाहता हूँ।''

मैंने उनकी भावना को जानकर कहा आप 'वेद प्रचार मण्डल' के नाम पर यह कार्य करें। निश्चय ही इससे आपको बड़ा यश मिलेगा। उस दिन से आज तक आपने छोटी-बड़ी स्थायी महत्त्व की कोई तीस पुस्तकें छपवाकर दूर-दूर तक अनेक लोगों के हाथों में पहुँचा दीं। इनमें से कई आर्यसमाज के दिवंगत मूर्धन्य विद्वानों की अलभ्य कृतियाँ हैं। इसमें आपके प्रभाव व प्रेरणा से कई अन-आर्यसमाजी दानियों ने भी खुलकर सहयोग किया है व कर रहे हैं। जिनका आर्यसमाज से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहा, उन तक आपने वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों पर उत्तम वैदिक साहित्य पहुँचाया है। इन पच्चीस वर्षों में पंजाब में किसी भी सभा-संस्था ने इस कोटि का इतना साहित्य न तो छपवाया है और न ही खपाया है। परोपकारिणी सभा तथा सब बड़े-बड़े प्रकाशकों से भी आप साहित्य क्रय करके प्रसारित करते रहते हैं। अब तो कई सार्वदेशिक सभायें देखने-सुनने में आ रही हैं। इन बड़ी-बड़ी सभाओं से कहीं अधिक जितेन्द्र कुमार जी गुप्त साहित्य प्रकाशित करते ही रहते हैं तथा प्रसारित भी करते रहते हैं।

सन् १९९५ में मुझे कहा था कि २०-२५ पुस्तकें छपवाने का मेरा विचार है, परन्तु आप इससे भी कहीं अधिक पुस्तकें अब तक छपवा चुके हैं। देश भर की कोई प्रान्तीय सभा कहीं भी ऐसा सुन्दर साहित्य नहीं दे पाई। राम जन्मभूमि के इलाहाबाद हाईकोर्ट के निर्णय के समय हिन्दू संस्थाओं ने रात्रि दस बजे मुझे चलभाष करके जगाया और श्रीराम के जन्मस्थान का कोई नया प्रबल प्रमाण देने

को कहा। तब एक पुराने उर्दू महाकवि कैफ़ी की एक पुस्तक 'भारत-दर्पण' जो कभी किसी मुसलमान ने छपवाई थी उसका प्रमाण उन्हें बताया। उन्होंने वह पुस्तक माँगी। श्री जितेन्द्रकुमार ने मेरे द्वारा देवनागरी में उसका एक संस्करण छपवाया था, उसे प्राप्त कर कोर्ट में पेश करने को कहा। उनको यह भी कहा कि गोमती नगर लखनऊ के एक आर्यबन्धु से यह पुस्तक मिल सकती है। लखनऊ से वे वकील उस आर्यसमाजी के घर गये। वह ऐतिहासिक पुस्तक कोर्ट में काम आई। श्री जितेन्द्र जी ने ऐसे-ऐसे उपयोगी व ठोस काम किये हैं।

महात्मा नारायण स्वामीजी की भूमिका से लिखा गया श्रद्धेय लक्ष्मण जी का उर्दू ग्रन्थ 'निष्कलङ्क दयानन्द' अनूदित करवा के छपवाया। चुपचाप ऐसे-ऐसे कार्य किये जा रहे हैं। हमारे एक देशप्रेमी मुस्लिम साहित्यकार डॉ. अलिफ़ नाज़िम जी को उर्दू साहित्य को देश प्रेम तथा बलिदानियों का विषय देने वाले पहले महाकवि श्रीयुत दुर्गासहाय 'सुरूर' की लुप्त हो चुकी सैंकड़ों छोटी-बड़ी कविताओं के उद्धार के लिये आपने भारी राशि उपलब्ध करवाई है। स्मरण रहे कि सुरूर जी आर्यसमाज के आरम्भिक काल के एक नामी आर्यसमाजी थे। उनकी कविताओं की खोज करने पर ही भारी धन व्यय हो गया। दो खण्डों में यह साहित्य प्रेस में प्रकाशन अधीन है। उर्दू के नामी साहित्यकारों ने इस ग्रन्थमाला पर अपनी विस्तृत सम्मतियाँ दिल खोलकर लिखी हैं। मेरा प्राक्कथन भी बहुत दूरगामी परिणाम दिखायेगा।

श्री जितेन्द्र जी गुप्त को- हम इस ग्रन्थमाला का ऋषि मेले पर विमोचन करवाने वाले थे कि कुछ और कवितायें मिल जाने से ग्रन्थमाला तब तक छप न सकी। सबको इसमें लिखना पड़ा कि सुरूर ने उर्दू साहित्य को देश-प्रेम, बलिदानियों, विधवा तथा अनाथ के विषय इस कारण से दिये क्योंकि वह स्वामी दयानन्द जी और पं. लेखराम का शिष्य था। उर्दू साहित्य के इतिहास में पहली बार ऋषि दयानन्द तथा पं. लेखराम का उल्लेख करवा पाये तो इसका बहुत बड़ा श्रेय श्रीमान् जितेन्द्र कुमार जी गुप्त की लगन, पुरुषार्थ व सहयोग को जाता है। जो कार्य कोई नेता, कोई सभा, कोई कॉलेज, स्कूल व गुरुकुल न करवा सका वह गुप्त जी ने कर दिखाया है। अब पं. लेखराम मिशन की एक विशाल सभा में हरियाणा में कहीं ऋतु के बदलने पर इस ग्रन्थमाला का विमोचन होगा। आर्य महाकवि महाशय जैमिनि सरशार जी के 'करबला' काव्य का भी आपने एक नया संस्करण छपवा दिया है। यह बताना भी हमारा कर्त्तव्य बनता है कि श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त दैनिक सन्ध्या हवन के नियम का कड़ाई से पालन करते हैं। आओ प्रभु से सब यही प्रार्थना करें-

लगन सबको ऐसी लगा दीजियेगा।
हमें अपनी भक्ति सिखा दीजियेगा।।

सरदार पटेल का अन्तिम भाषण- मोदीजी तथा उनकी सरकार तथा दल के सब बड़े-बड़े मन्त्री सरदार पटेल जी के नाम की दुहाई बहुत देते रहते हैं। इसमें दो मत नहीं कि देश-विभाजन के पश्चात् देश की रक्षा व एकीकरण के लिये जो कुछ सरदार पटेल ने किया वह कोई दूसरा नेता न कर सका। ओवैसी का दल तथा उस दल का नेता कासिम रिज़वी तो दिन-रात हैदराबाद को एक पृथक् स्वतन्त्र इस्लामी स्टेट घोषित कर रहे थे। कासिम रिज़वी दिल्ली आकर सरदार पटेल के सामने यह धमकी देकर गया कि हैदराबाद की ओर यदि आँख उठाकर देखा तो दक्षिण भारत में हिन्दुओं के लहू की नदियाँ बहेंगी। सरदार ने उसे अपनी गम्भीर मुद्रा में उसी समय उपयुक्त उत्तर दे दिया। यह घटना प्रधानमन्त्री जी और मान्य शाह जी को ज्ञात न हो तो हम सप्रमाण सविस्तार बता सकते हैं।

न जाने ओवैसी का मुँह बन्द करने के लिये प्रधानमन्त्री जी अथवा गृहमन्त्री यह प्रेरक प्रसंग कभी क्यों नहीं सुनाते। ओवैसी के मुख से कभी आपने सरदार पटेल का नाम नहीं सुना होगा। उसका कारण कासिम रिज़वी का सपना धूल धूसरित करना है।

महापुरुषों के जीवन में उनके जीवन की अन्तिम वेला और अन्तिम भाषण, अन्तिम शब्द सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं। सरदार पटेल की मूर्ति का बखान तो बहुत हो लिया। मूर्ति सबसे ऊँची सरकार ने बनवा दी। हमारे लिये तो सरदार बड़ी से बड़ी मूर्ति से भी कहीं ऊँचा था। प्रधानमन्त्री और उनके दल के लोग स्वामी विवेकानन्द जी के शिकागो के अंग्रेजी भाषण का बहुत ढोल पीटते रहते

हैं, परन्तु स्वामी विवेकानन्द जी ने जीवन की साँझ में ढाका में जो भाषण दिया उसकी चर्चा न भाजपा का कोई नेता करता है और न भाजपा को चलाने वाला संघ ही करता है। उनके अन्तिम दिनों के इस भाषण तथा वहाँ किये गये प्रश्न का जो दो टूक उत्तर स्वामी विवेकानन्द जी ने दिया उसका सरकारी तन्त्र द्वारा बहिष्कार हमारी समझ से सदा बाहर रहा।

अब इसका रहस्य कुछ समझ में आया। इस व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द जी ने वेदों का महत्त्व बताते हुये पुराणों की सृष्टि-नियम विरुद्ध कहानियों व गप्पों का जोरदार खण्डन किया। पुराणों के खण्डन से मूर्तिपूजा, जड़पूजा, अवतारवाद, जातिवाद, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच तथा स्त्री जाति के अपमान की जड़ कट जाती है। सरकारी तन्त्र देश पर मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलित ज्योतिष अन्धविश्वास लादना चाहता है। अतः ढाका के स्वामी विवेकानन्द जी के अन्तिम काल के व्याख्यान की कहीं भी ये लोग चर्चा नहीं करते।

सरदार पटेल का अन्तिम व्याख्यान दिल्ली में आर्यसमाज की वेदी से दिया गया। आर्यसमाज के उत्सव में ऋषि दयानन्द जी महाराज को दी गई श्रद्धाञ्जलि का इस सरकार के लिये कोई महत्त्व नहीं। हिन्दी की प्रतिष्ठा की बात करने वाली सरकार इस हिन्दी में दिये गये भाषण की कभी चर्चा करती है? शिकागो का अंग्रेजी भाषण इनके लिये गुरुमन्त्र है। **सरदार ने ऋषि दयानन्द को स्वराज्य आन्दोलन की नींव रखने वाला बताया। सरकार इस तथ्य इस सत्य को मुखरित करना नहीं चाहती।** इतना पक्षपात! इतना पूर्वाग्रह! इतनी संकीर्णता! हमने कभी कल्पना तक न की थी।

परन्तु भाजपा के लोग ध्यान से सुन लें व याद रखें-

'फूँकों से यह चिराग बुझाया न जावेगा'

धर्मच्युत हो चुके विधर्मियों को वापिस लाने की घोषणा को तीन वर्ष बीत गये। इस घोषणा का क्या बना? एक भी विधर्मी बन चुका हिन्दू (स्त्री-पुरुष) आप लोग वापिस न ला सके। इस परिवर्तनशील संसार में काँग्रेस, सपा व साम्यवादी न टिक सके तो आप कब तक शिकागो भाषण की रट लगाते हुये टिकेंगे। कभी शिवाजी और महाराणा प्रताप इन दो के चित्र लगाकर अपने कार्यक्रम करते थे। अब शिवाजी और महाराणा प्रताप के चित्रों को छोड़कर नई-नई मूर्तियों व चित्रों को प्रधानता दी जा रही है। आपके कई अच्छे कार्यों का दिल खोलकर हमने समर्थन किया, परन्तु काशी शास्त्रार्थ शताब्दी तथा महर्षि दयानन्द बलिदान पर्व पर ऋषि दयानन्द पर आपकी सरकार के अखण्ड मौन पर आप क्या हैं, यह हम जान गये और मान गये।

सरदार पर वह ऐतिहासिक ग्रन्थ- जब प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी गुजरात के मुख्यमन्त्री थे तो मैंने उन्हें श्री वी.पी. मेनन द्वारा लिखित अद्भुत प्रेरक ग्रन्थ-सरदार द्वारा छः सौ रियासतों के भारत में विलय का इतिहास The Story of Integration of Indian States का विभिन्न भारतीय भाषाओं में छपवाने का उद्यम करने के लिये पर पत्र लिखा था। मुझे इसकी प्राप्ति की सूचना भी न मिली। देशवासियों को निराश करने वाले इतिहास की कहानियाँ तो बहुत सुननी पड़ती हैं। इस देश का दुर्भाग्य कि गौरवपूर्ण इस इतिहास-ग्रन्थ की चर्चा बड़े-बड़े नेता तथा भारतीय इतिहासज्ञ और पत्रकार भी नहीं करते। मैंने जब-जब इसे पढ़ा मुझे हार्दिक आनन्द प्राप्त हुआ। इसके चुने हुये प्रसंग एक अलग पुस्तक के रूप में विद्यार्थियों के लिये संकलित किये जाने चाहियें। नेहरू जी ने जम्मू-कश्मीर की भाँति हैदराबाद स्टेट को भी अपने पास ही रखा था। उसे सुलझाने की बजाय और उलझा दिया। सरदार पटेल ने हैदराबाद को भारत का अंग कैसे बनाया, यह सारा इतिहास नई पीढ़ी के लिये अलग से छपना ही चाहिये। वैसे तो पूर्व हैदराबाद स्टेट के कई लेखकों ने अपने मुक्ति-संग्राम पर कई पुस्तकें लिखी हैं, परन्तु श्री वी.पी. मेनन ने जो कुछ लिखा है उसकी प्रामाणिकता की प्रत्येक इतिहासज्ञ भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। न जाने सन् १९४८ से लेकर आज तक भारत सरकार तथा आन्ध्र, तेलङ्गाना, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र की सरकारों ने इस अनूठे ग्रन्थ की इतनी उपेक्षा क्यों की है।

आर्यसमाज से जुड़े बन्धुओं, आर्यसमाजी पत्रों में लिखने वाले लेखकों में से किसी ने भी इस विषय की गहरी व व्यापक खोज करके जो कुछ मैंने लिखा है उसका भी

आर्यजनता को लाभ नहीं पहुँचाया। अमेरिका में बैठे कुछ पुराने हैदराबादी प्रबुद्ध सज्जनों ने अवश्य मुझे इस विषय पर एक अलग पुस्तक लिखने के लिये बहुत बार आग्रह किया है और वे अब भी दबाव बनाये हुये हैं।

वे आर्य शिक्षक अब कहाँ हैं?- मैंने तड़प-झड़प के प्रेमियों को वचन दिया था कि उनकी इच्छा का सम्मान करते हुये मैं डी.ए.वी. के तथा अन्य आर्य स्कूलों-कॉलेजों के निष्ठावान् दृढ़ आर्यशिक्षकों पर (भले ही वे आटे में नमक भी नहीं थे) परोपकारी में क्रमशः कुछ अवश्य लिखूँगा।

ज्ञानी पिण्डीदासजी आर्य नेता ने अपने एक मिशनरी आर्य टीचर का एक हृदयस्पर्शी संस्मरण कभी लिखा था। यह थे प्रिं. रामदित्तामलजी भाटिया प्रिंसिपल डी.ए.वी. कॉलेज रावलपिण्डी। आप पहले स्कूल के हैडमास्टर थे और गणित पढ़ाते थे। मैट्रिक की परीक्षा के दिनों में एक-दो दिन में गणित का पेपर होने वाला था। ज्ञानी पिण्डीदास दसवीं की परीक्षा की तैयारी में दिन-रात जुटे रहते। गणित का कोई प्रश्न समझाने वाला आस-पास नहीं था। यह सायं समय श्री रामदित्तामल के घर पहुँच गये। आपने बड़े प्यार से अपने आर्य विद्यार्थी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया। पिण्डीदास ने अपनी उलझन सुलझा ली। अब रामदित्तामल जी अनुरोध करने लगे कि और जो समझना हो समझ ले। ऐसे करते-करते, पढ़ते-पढ़ते पिण्डीदास जी को रात पड़ गई। अन्धेरा घटाटोप था। बालक पिण्डीदास अपने घर जाने लगा तो आर्य हैडमास्टर ने कहा, **''बेटा रुक जा। घना अन्धेरा है। मैं तुझे घर तक छोड़कर आता हूँ।''** बालक पिण्डीदास ने सारा जीवन आर्यसमाज की सेवा की। उनकी लगन व तड़प का एक कारण प्रिं. रामदित्तामल के चरित्र व सेवा की गहरी छाप थी।

प्रि. मेलारामजी बर्क करनाल- आप छात्र-जीवन में ही दृढ़ आर्य बन गये। कॉलेज पार्टी से जुड़े थे, परन्तु गुरुकुल पक्ष में भी आपका बड़ा सम्मान था। आप मुस्लिम बहुल ज़िला मियाँवाली में हैडमास्टर थे। वहाँ के मुसलमान जज को अपनी पत्नी को मैट्रिक की परीक्षा दिलवानी थी। उसने वहाँ के दो-तीन स्कूलों के सुयोग्य अध्यापकों का ट्यूशन के लिये पता करवाया। जो जानकारी प्राप्त हुई उस सूची में आर्यसमाजी मेलाराम बर्क का भी नाम था। जज की पत्नी अत्यन्त रूपवती थी। मेलाराम भी भरी जवानी में बहुत सुन्दर थे। जज के घर पढ़ाने जाना पड़ता था। जिस कमरे में मेलाराम उस देवी को पढ़ाया करते थे उसके छत के निकट एक रोशनदान था। दूसरे छत पर बैठकर जज यदा-कदा मेलाराम जी को पढ़ाते समय छिपकर देखा करता था।

उसने जब-जब आर्यसमाजी मेलाराम को रोशनदान से देखा वह आँखें नीचे किये हुये जज की रूपवती पत्नी को पढ़ाता हुआ दिखाई दिया। पढ़ाई पूरी हो गई। जज ने ट्यूशन की फ़ीस देने का आग्रह किया। बर्क जी ने जज की पत्नी थी इसलिये घर पर जाकर पढ़ाना आरम्भ किया था। वह ट्यूशन रखते ही नहीं थे। जज महोदय ने तब जो कुछ कहा **वह आर्यसमाज के इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है।**

उसने कहा, ''मैंने अध्यापकों की सूची मँगवाई। कई अच्छे योग्य मुसलमान अध्यापकों के भी नाम आये। पता चला कि आप आर्यसमाजी हैं, इसलिये मैंने **डी.ए.वी. के आर्यसमाजी टीचर को प्राथमिकता दी।** आपको रोशनदान से जब-जब पढ़ाते देखा आपको आँखें नीची किये पाया। कोई मुसलमान अध्यापक होता तो कहानी कुछ उलट ही होती। आपके आचरण से, पढ़ाने से मैं गद्गद हो गया। यह फीस तो लेनी ही पड़ेगी। मैंने यह कहानी 'रिफॉर्मर' साप्ताहिक में पढ़ी थी, फिर जाँच के लिये माननीय बर्क जी भेंट करके उनके मुख से सुनी थी।

प्रिंसिपल देसराज जी कादियाँ- पं. लेखराम स्मारक मण्डल कादियाँ के भवन का सारा निर्माण जिनकी देखरेख में हुआ वह थे प्रिंसिपल देसराज जी। आप आर्यसमाज के एक अत्यन्त लोकप्रिय, प्रभावशाली, सुयोग्य, परन्तु मौन सेवक थे। उनकी समाज-सेवा का इतिहास बड़ा लम्बा है। उनके बारे में क्या लिखूँ? वह कादियाँ के थे, सारा जीवन वहाँ के स्कूल को दे दिया। मेरे भी टीचर थे और मेरे ताया जी के पुत्ररत्न- मेरे बड़े भ्राता थे, सो लिखते हुये कुछ संकोच सा भी होता है। वह कादियाँ के थे और भाई थे, अतः बहुत कुछ जानता हूँ, परन्तु उनके आर्यत्व के दो

ही प्रसंग जो हमने औरों के मुख से सुने वे अत्यन्त संक्षेप से दिये जाते हैं।

मैं जबलपुर आमन्त्रित किया गया। समाज के अधिकारियों ने बताया कि हमें यहाँ आपका विस्तृत परिचय आपके शिष्य कर्नल राजकुमार जी ने दिया है। यह सुनकर हर्ष तो हुआ, परन्तु उन्हें कहा कि यह उनका बड़प्पन है जो स्वयं को मेरा शिष्य बता दिया। मैंने उन्हें आर्यसमाजी तो बनाया, परन्तु वह तो मेरे से एक क्लास पीछे थे। हाँ! मेरे भाई प्रिंसिपल देसराज जी के शिष्य अवश्य रहे हैं। उनके घर पर गया तो आपने पूछा, ''प्रिंसिपल देसराज जी का सुपुत्र रमेश कहाँ है?'' मैंने बताया काँगड़ा डी.ए.वी. कॉलेज का प्रिंसिपल है।

राजकुमार जी के पिताजी का निधन देश-विभाजन के समय हो गया था। विधवा माता पढ़ाने का बोझा न उठा सकती थी। घर प्रिंसिपल देसराज जी के पड़ोस में था। देसराज जी ने सुन्दर बालक राजकुमार को गलियों में ही खेलते देखा। पूछा, ''तेरा घर कहाँ है?'' उसकी माता से मिले, ''इसे स्कूल क्यों नहीं भेजते?'' उसने कहा, ''फीस व पढ़ाई का खर्च कहाँ से लाऊँ?''

देसराज जी ने कहा, ''यह लड़का मुझे दे दो। मैं व्यवस्था करूँगा।'' बहुत संक्षेप से यह घटना राजकुमार जी से सुनकर मैंने पहली बार एक पुस्तक में दी। ऐसे ही दलित वर्ग में जन्मे एक बालक के पिता से कहा, ''जो माँगूं सो देना पड़ेगा।'' उसके पुत्र को चीफ़ इंजीनियर बना दिया।

शेष फिर...

---

१. कुल्लियाते आर्य मुसाफिर (पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह)- दो भाग

लेखक- पण्डित लेखराम

सम्पादक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब

मूल्य- रुपये ~~९००~~/- **छूट पर**- ६००/-

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (दो भाग में)

मूल्य - रुपये ~~८००~~/- **छूट पर** - ५००/-

३. अष्टाध्यायी भाष्य- ३ भाग (१ सैट)

भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- रुपये ~~५००~~/- **छूट पर**- ३५०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर विहङ्गम दृष्टिपात-३

डॉ. रामप्रकाश वर्णी, डी.लिट्

(गताङ्क से आगे)

प्रश्न-३. संसार में जितने भी रूप हैं वे सभी ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं। अत: सर्व-स्वरूपत्वभाव से परमात्मा साकार है। क्या यह मानना उचित है?

उत्तर- नहीं, कदापि नहीं। यतो हि संसार में दिखाई देनेवाले सभी रूप 'ब्रह्म' के न होकर 'अनादि-प्रकृति' के रूप हैं। इसका कारण यह है कि 'ब्रह्म और जीव' से अलग 'अनादि-प्रकृति' भी तीन 'अनादि-तत्त्वों' में से एक तत्त्व है। इसी में अनेक प्रकार के रूपादि परिवर्तन होते रहते हैं। जिसे 'ब्रह्म' कहते हैं उसमें न तो कोई परिवर्तन होता है और न ही कोई विकार। न उस ब्रह्म=परमात्मा का कोई 'तद्रूप-कार्य' है और न वह किसी का कार्य है अर्थात् उस परब्रह्म का कोई 'कारण' नहीं है, जैसा कि 'श्वेताश्वतर-उपनिषद्' के इस लेख से स्पष्ट है-

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते,
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च।। ६।८।।

पृथिवी आदि पाँच तत्त्वों के संघात=समूह का नाम 'प्रकृति' है, जो कि ''क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर'' के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें से 'आकाश-तत्त्व' 'अनादि-नित्य' और 'एकरस' है तथा 'वायु, अग्नि, जल' और 'पृथिवी' ये चारों तत्त्व अधोलिखित दो-दो प्रकार के हैं- एक तो ये 'कारण' रूप से 'सूक्ष्म' तथा 'अनादि' हैं और दूसरे 'कार्यरूप' में दृश्यमान ये 'स्थूल' और 'अनित्य' है। जैसाकि 'वैशेषिक-दर्शन' के इन सूत्रों से स्पष्ट है-

पृथिव्यादि-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शा
द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च।
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम्।। ६।१।२,३।।

इन सूत्रों का अर्थ यह है कि 'पृथिवी, जल, अग्नि' तथा 'वायु' के क्रमश: 'गन्ध, रस, रूप' और 'स्पर्श' गुण इन 'पृथिवी' आदि के 'अनित्य' होने से 'अनित्य' ही होते हैं, तथा 'नित्य-द्रव्यों' के उपर्युक्त गुण 'नित्य' होते हैं। इसी रहस्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कणादर्षि कहते हैं-

अनित्येष्वनित्या द्रव्यानित्यत्वात्।
कारणगुणपूर्वका: पृथिवी पाकजा:।।

तत्रैव ५,६।।

इन सूत्रों का अभिप्राय यह है कि द्रव्यों के 'अनित्य' होने से उनके 'गुण' भी अनित्य होते हैं। कार्यरूप पृथिवी में अन्य द्रव्यों के साथ पकने से उत्पन्न हुए 'रस, रूप' और 'स्पर्श' गुण अपने-अपने कारणों के गुणों से आये हुए होते हैं। किञ्च **'सदकारणवन्नित्यम्'** (तत्रैव ४।१।१) सूत्र के अनुसार ''जो विद्यमान हो और उसका कारण कोई भी न हो वह 'नित्य' कहलाता है।'' अत: स्पष्ट होता है कि जागतिक सभी रूप (उपर्युक्त पाँच तत्त्व रूप) अनादि प्रकृति के ही हैं, ब्रह्म के नहीं। इसलिए परब्रह्म परमात्मा सर्वथा 'निराकार' ही है, 'सर्वस्वरूपत्वभाव' से 'साकार' नहीं।

प्रश्न-४. आप कहते हैं कि परब्रह्म-परमात्मा का न कोई 'कारण' है और न कोई 'कार्य', जबकि 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में उपर्युक्त पञ्च तत्त्वों को स्पष्टत: परमात्मा से ही उत्पन्न होनेवाला बतलाया गया है। जैसाकि इस औपनिषद्वाक्य से स्पष्ट है-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश: सम्भूत:। आकाशाद्वायु:। वायोरग्नि:। अग्नेराप:। अद्भ्य: पृथिवी। पृथिव्या ओषधय:। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेत:। रेतस: पुरुष:। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय:।

तै. उ. ब्रह्मानन्द, वल्ली, अनु. १।।

उत्तर- आपने अर्थ के निर्धारक, योग्यता, आकाङ्क्षा, तात्पर्य में से यहाँ योग्यता की सर्वथा उपेक्षा करते हुए सर्वत्र पञ्चमी विभक्ति का अर्थ 'से' ही लिया है, जबकि पञ्चमी विभक्ति का अर्थ 'पश्चात्' भी होता है। यहाँ पर इस औपनिषद् उद्धरण का वास्तविक अर्थ यह होगा-

''**उदाहरण**- आत्मन='निमित्तकारण' रूप 'परमात्मा' और 'उपादानकारण' रूप प्रकृति से आकाश: अवकाश=रिक्तस्थान अर्थात् जो कारणरूप-द्रव्य सर्वत्र विकीर्ण=फैला हुआ सा था उसको इकट्ठा करने से

आकाश=अवकाश उत्पन्न सा होता है 'उत्पन्न नहीं' क्योंकि वह नित्य है। **अथ च** अकाश के बिना 'प्रकृति' और 'परमाणु' कहाँ अवस्थित होंगे? इस तरह उत्पन्न से लगनेवाले आकाश के पश्चात् 'वायु' और वायु के पश्चात् 'अग्नि' और अग्नि के पश्चात् जल और इसके पश्चात् 'पृथिवी' और पृथिवी के पश्चात् 'ओषधि', ओषधियों के बाद 'अन्न' और अन्न से 'वीर्य' और 'वीर्य' से पुरुष=शरीर उत्पन्न होता है।'' अत: इस औपनिषद् सन्दर्भ से जागतिक तत्त्वों का 'उपादान-कारण' ब्रह्म को नहीं माना जा सकता है। वस्तुत: वह जगत् का 'निमित्तकारण' ही है और प्रकृति 'उपादान-कारण' है। यहाँ पर 'आत्मन:' पद से ब्रह्म का 'निमित्तकारण' और प्रकृति का 'उपादानकारणत्व' ही वाच्य है।

प्रश्न-५. यजुर्वेद में '**तदेवाग्निस्तदादित्य:**' कहकर स्पष्ट ही 'अग्नि' और 'सूर्य' आदि को 'ब्रह्म' बतलाया गया है। अत: आपका उपर्युक्त विवेचन ठीक नहीं है?

उत्तर- महोदय! आपका यह कथन सर्वथा अविचारित रमणीय है। अत: इस याजुष मन्त्र में अग्नि, सूर्य आदि को 'ब्रह्म' नहीं बतलाया गया है, प्रत्युत परब्रह्म परमेश्वर के अनगिनत गुणों के कारण उसके अनेक गौणिक नामों का 'अग्नि, सूर्य' आदि के रूप में संकीर्तन किया गया है। सम्पूर्ण मन्त्र और उसका अर्थ निम्नलिखित है-

''तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा:।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आप: स प्रजापति:।।

यजु: ३२।६।।''

हे मनुष्यो! 'तत्'= वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सनातन, अनादि, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, मुक्तस्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्त्ता और सबका अन्तर्यामी 'एव'= ही 'अग्नि:'= ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से 'अग्नि' है। तत्= वह 'वायु:'= अनन्त बलवान् और सबका धारक होने से 'वायु' है। 'तत्'= वह, 'चन्द्रमा'= आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा है। 'तत् एव'= वही, 'शुक्रम्'= शीघ्रकारी वा शुद्धभाव से 'शुक्र' है। 'तत्'=वह 'ब्रह्म'= महान् होने से ब्रह्म है। 'तत्'= वह 'आप:'= सर्वत्र व्यापक होने से आप: है 'उ'= और स:= वह 'प्रजापति:'= सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है, ऐसा तुम लोग जानो। इसी अभिप्राय को ध्यान में रखते हुए ऋषिवर दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के शताधिक नामों की व्याख्या प्रस्तुत की है। अत: यहाँ ईश्वर के अनेक नामों का ही गुणानुरोध से दिग्दर्शन किया गया है। ईश्वर को 'अग्नि' आदि जड़-द्रव्यों का 'उपादान-कारण' नहीं बतलाया गया है। इस स्पष्ट विवेचन के बाद भी विपक्षी चुप नहीं रहता है। वह कहता है कि ''यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर से ही उत्पन्न होता है। इसलिए ब्रह्म ही इस जगत् का अभिन्न-निमित्तोपादानकारण है। इसलिए संसार के जितने भी छोटे-बड़े रूप हैं, वे सब उसी के रूप हैं। परन्तु विचार करने पर विपक्षी का यह कथन भी नि:सार ही प्रतीत होता है। यतो हि 'ब्रह्म' या 'परमेश्वर' इस जगत् का 'अभिन्न-निमित्तोपादानकारण' कैसे है? इस सम्बन्ध में उसने कोई श्रुति या स्मृति का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है और न ही उसने स्वपक्ष की साधिका कोई युक्ति ही प्रस्तुत की है। जबकि ईश्वर या ब्रह्म का 'निमित्तकारणत्व' प्रकृति का 'उपादान-कारणत्व' तथा जीव का साधारणकारणत्व, जगत्प्रसिद्ध है। जैसाकि-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।

(ऋग्. १।१६४।२०)

इस ऋग्वेदीय ऋचा से स्पष्ट है।

प्रकृति की 'नित्यता' और 'उपादानकारणता' को अथर्ववेद में इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है-

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
महीं देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे।।

अथर्व. १०।१८।३०।।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि -''सदा रहने वाली यह नित्य प्रकृति सदा ही कार्य करती रहती है अर्थात् नित्य नूतन कार्य उत्पन्न करती रहती है। यह पुराणी प्रकृति सब कार्यों में पूर्णतया रहती है। यह बड़ी तथा कान्तिमयी है तथा कमनीय पदार्थों को विशेष रीति से प्रकाशित करनेवाली है। यह प्रकृति प्रत्येक गतिशील जीव के साथ अपने स्वरूप का कथन कर रही है। अत: इससे यह निष्कर्ष उभरकर सामने आता है कि इस संसार में जितने भी छोटे-बड़े रूप हैं, वे सभी रूप प्रकृति के ही हैं, परब्रह्म परमात्मा के नहीं हैं।

शेष अगले अंक में....

ऐतिहासिक कलम से....

ईश्वर के अनेक नाम
अर्थ-विवेचन और व्याख्या

(सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास के आधार पर)

श्री पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार

अब आगे के अंकों में परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करायेगी जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनमें यह प्रथम लेख 'ईश्वर के अनेक नाम' आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् चतुर्वेद भाष्यकार पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार जी द्वारा लिखा गया है। यह आवश्यक नहीं है कि लेख में प्रस्तुत किये गये विचारों से सम्पादक सहमत हो ही। तथापि लेख उपयोगी होने के कारण दिया जा रहा है।-सम्पादक

अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम समुल्लास वस्तुत: ग्रन्थ का मंगलाचरण है। यही कारण है कि प्रत्येक समुल्लास के प्रारम्भ में जहाँ ऊपर शीर्षक में विषय का संकेत हुआ है, वहाँ प्रथम समुल्लास में इस प्रकार का कोई शीर्षक नहीं है। इसलिए सत्यार्थप्रकाश का प्रारम्भ द्वितीय समुल्लास से ही समझना चाहिये। प्रथम समुल्लास में तो आचार्य ने अपने ग्रन्थ को प्रारम्भ करने के लिए प्रभु का स्मरण किया है। वैदिक संस्कृति में प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ प्रभु-स्मरण के साथ करने की परिपाटी है। आचार्य भी इस परिपाटी का पालन करते हुए प्रथम समुल्लास में प्रभु का स्मरण करते हैं। यही मंगलाचरण है. जिसके लिये पतञ्जलि प्रसंगवश लिखते हैं कि

मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते

अर्थात् जिन शास्त्रों का प्रारम्भ, मध्य व अन्त मंगल से होता है, वे शास्त्र संसार में विस्तृत होते हैं।

ओ३म्, God व अल्लाह

प्राचीन ऋषि मुनि 'ओ३म्' वा 'अथ' शब्द से अपने ग्रन्थों का प्रारम्भ किया करते थे। 'ओ३म्' के अनेक अर्थ होते हुए भी मुख्य प्रचलित अर्थ 'रक्षक' ही है। '**अव रक्षणे**' धातु से इस शब्द को बनाया जाता है। '**गुड रक्षणे**' भी धातु है, उससे यह God शब्द बन गया है। 'अलं' वारण=रोकने का वाचक है, 'ला' का अर्थ प्राप्त कराना है (आदान)। विघ्नों के निवारण की शक्ति का आदान किये हुए वे प्रभु 'अल्लाह' हैं। इस प्रकार मूल में ये सब शब्द समानार्थक हैं। 'ओ३म्' की मूल धातु 'अव' उन्नीस अर्थों वाली है एवं ओ३म् का अर्थ अधिक व्यापक हो जाता है। माण्डूक्योपनिषद् में 'अ उ म्' इस प्रकार तीन मात्राओं को भिन्न-भिन्न धातुओं से बना हुआ प्रतिपादित करके 'अ' से विराट्-अग्नि व विश्व आदि नामों का, 'उ' से हिरण्यगर्भ, वायु व तेजस आदि का तथा 'म' से ईश्वर, आदित्य व प्राज्ञादि नामों का ग्रहण किया है। इस प्रकार 'ओ३म्' का अर्थ बढ़ा व्यापक हो जाता है। सिद्धान्तत: यह सारे वेदों का सारभूत है। सारे वेदों को एक शब्द में कहना हो तो यही कहेंगे कि 'ओ३म्'। इस बात का ध्यान करते हुए आचार्य ने 'ओ३म्' को प्रभु का सर्वोत्कृष्ट नाम माना है। इस नाम के अतिरिक्त निन्यानवें अन्य नामों का व्याख्यान करके आचार्य ने अपने मंगलाचरण को पूरा किया है। संयोगवश कुरान में भी 'अल्लाह' के अतिरिक्त प्रभु के निन्यानवें और नाम आये हैं और इस प्रकार वहाँ भी प्रभु के सौ ही नाम प्रसिद्ध हुए हैं। 'अथ' शब्द का अर्थ भी है

'प्रभु के रक्षण में' (अ=प्रभु, थ-Protection-रक्षण)।

अग्नि वायु इन्द्र

'ओ३म्' के अतिरिक्त प्रभु को 'अग्नि, वायु, इन्द्र' आदि नामों से आचार्य ने स्मरण किया है। यह ठीक है कि ये नाम आग, हवा व सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थों के भी हैं; साथ ही ये नाम प्रभु के भी हैं। जहाँ भी स्तुति, प्रार्थना, उपासना का प्रसंग हो और सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध सनातन आदि विशेषण दीखें; वहाँ इन नामों से प्रभु का ही ग्रहण करना चाहिये, परन्तु जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का प्रकरण हो और जड़ व दृश्य आदि विशेषण हों, वहाँ प्रभु का ग्रहण न करके इन नामों से लौकिक वस्तुओं का ग्रहण ही उचित है । एक 'ओ३म्' नाम ऐसा है जो किसी प्राकृतिक वस्तु का नहीं। यह केवल परमेश्वर का ही नाम है। सो यह परमेश्वर का निज नाम है। इसलिए भी यह नाम सर्वोत्कृष्ट है। उस प्रभु का निर्देश 'ओ३म् तत् सत्' इस प्रकार किया जाता है। इस प्रसिद्ध निर्देश में भी 'ओ३म्' को प्रथम स्थान दिया गया है। यह रक्षक प्रभु (ओ३म्) सर्व व्यापक (तत्) और सदा निर्विकाररूपेण रहने वाले हैं (सत्)।

हरि ओ३म्

अग्नि आदि नामों की तरह 'हरि' नाम भी दु:खों के हरण करने वाले प्रभु का ही है तथा यह शब्द 'घोड़े' आदि का भी प्रतिपादन करता है। यह नाम प्रभु का वाचक अवश्य है, परन्तु जब 'ओ३म्' नाम की सर्वश्रेष्ठता सर्वमान्य है तो ओ३म् नाम से पूर्व किसी और नाम को स्थान देना उतना ठीक नहीं है। 'ओ३म् तत् सत्' इस निर्देश की तरह 'ओ३म् हरि' यह निर्देश ही अधिक उपयुक्त है। मध्यकाल में जबकि अनेक सम्प्रदाय आविर्भूत हो गये, उस समय वैष्णव सम्प्रदाय में 'हरि' विष्णु का नाम होने से अधिक समादृत हो गया और 'हरि ओ३म्' बोलना उन्हें ठीक लगा। प्राचीन पद्धति का ध्यान करते हुए और साम्प्रदायिक आग्रह के ऊपर उठते हए हमें 'ओ३म् हरि' इस रूप में ही प्रभु का स्मरण करना चाहिये।

समुद्र में बिन्दुवत्

इस प्रकार 'ओ३म्' के अतिरिक्त प्रभु के अनन्त नाम हैं। प्रभु के अनन्त गुण-कर्म-स्वभाव हैं। प्रत्येक गुण-कर्म-स्वभाव का एक-एक नाम है। यहाँ आचार्य ने सौ नामों का व्याख्यान किया है। ये सौ नाम तो नामसागर के कुछ बिन्दु मात्र ही हैं। यह समझ लेना कि सौ ही नाम हैं, यह तो भ्रम ही होगा।

मित्र

प्रभु के नामों में 'मित्र' यह भी नाम है। इसी प्रकार 'दयालु और न्यायकारी' आदि नाम हैं। ये नाम जीवों के लिए भी प्रयुक्त होते हैं, परन्तु जीवों में यदि कोई किसी का मित्र है, तो किसी दूसरे का कुछ विरोधी भी होता है। इसके विपरीत प्रभु सबके मित्र ही हैं। वे सब पर दया करनेवाले हैं। वे कभी अन्याय नहीं करते। जीव कहीं दया करता है, तो कहीं वह दया नहीं भी करता। अल्पज्ञता के कारण जीव से कुछ अन्याय हो जाने की सदा आशंका है। प्रभु सर्वज्ञ हैं और सर्वशक्तिमान् हैं, सो वे कभी अन्याय व निर्दयता करनेवाले नहीं होते। इस प्रकार 'मित्र, दयालु व न्यायकारी' आदि नाम ठीक-ठीक तो प्रभु के ही हो सकते हैं। जीव तो अशंत: ही मित्र, दयालु व न्यायकारी हो पाता है।

दयालु व न्यायकारी

लोक में 'दया' शब्द की भावना कुछ इस प्रकार से समझी जाती है कि अपराधी को दण्ड न देकर उसे क्षमा कर देना, परन्तु यदि यह भाव दया का समझा जाय और प्रभु की दया का यही स्वरूप हो तो उसका न्यायकारित्व तो नष्ट ही हो जाए। साथ ही अपराध क्षमा होने का सम्भव होने पर पाप करने में भय भी जाता रहेगा। इसलिये प्रभु की दया आचार्य के शब्दों में यही है कि प्रभु किसी का अहित नहीं चाहते और उन्नति पथ पर बढ़ने के लिए सब साधनों को समुचितरूपेण प्राप्त कराते हैं। इस दया के साथ न्यायकारित्व का किसी प्रकार से विरोध नहीं। प्रभु न्यायपूर्वक कर्मानुसार जीव को उस-उस स्थिति में दया प्राप्त कराते हैं। प्रभु का दिया हुआ दण्ड उस जीव के लिए इस प्रकार होता है जैसे कि रोगी को दी जाने वाली औषध। यह कड़वी होती है, पर रोग-निवारण के लिए आवश्यक होती है। इसी प्रकार प्रभु से दिया गया दण्ड पाप-प्रवृत्ति को दूर करने के लिए होता है। इस प्रकार प्रभु दयालु भी हैं, न्यायकारी भी।

सगुण व निर्गुण

जैसे 'दयालु व न्यायकारी' इन नामों में विरोध-सा प्रतीत होता था, इसी प्रकार सगुण व निर्गुण नाम भी परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं। गुणों से युक्त 'स-गुण' है और गुणों से रहित 'निर्-गुण'। लोक में तो साकार को सगुण व निराकार को निर्गुण कहने की भी परिपाटी है, परन्तु सगुण का शब्दार्थ साकार करना तो ठीक है ही नहीं। प्रभु स-गुण इसलिये हैं कि वे ज्ञान, शक्ति, दया व न्याय आदि गुणों के सदा साथ होते हैं और जड़ता आदि से रहित होने से वे निर्गुण हैं। प्रकृति के सत्त्व, रज व तम इन गुणों से ऊपर उठे होने के कारण वे प्रभु निर्गुण हैं। इन गुणों का रक्षण करते हुए भी वे इनसे लिप्त नहीं है।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश

'निर्गुण गुणभोक्तृ च'। ये निर्गुण होते हुए भी गुणों के भोक्ता (पालक) प्रभु अत्यन्त सूक्ष्म होने से (अणोरणीयान्) प्रकृति को ग्रहण करके उस प्रकृति से इस विकृति रूप संसार का निर्माण करते हैं। इस संसार का वर्धन करने के कारण वे प्रभु 'ब्रह्मा' हैं-(बृहि वृद्धौ)। उनके ज्ञान में किसी प्रकार की कमी नहीं। इसी से उनके बनाये हुए इस संसार में भी किसी प्रकार की कमी नहीं। (पूर्णमदः पूर्णमिदम्) प्रकृति से इस संसार के निर्माण में वे किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करते। सर्वशक्तिमान् होते हुए स्वयं ही इसकी रचना करने में वे समर्थ हैं। इस प्रकार वे प्रभु ज्ञान व शक्ति के पुञ्ज हैं। सर्वज्ञ हैं-सर्वशक्तिमान् हैं, ज्ञान के पति हैं। सरस्वती मानो उनकी पत्नी ही हो-पत्नी ही क्या, वे तो स्वयं 'सरस्वती' हैं। इसी प्रकार वे शक्ति के पुञ्ज हैं-'शक्ति' ही हैं।

इस संसार का निर्माण करके, सबके अन्दर व्यापक होकर, इन सब पिण्डों को वे धारण कर रहे हैं। इस व्याप्ति के कारण ही वे 'विष्णु' हैं (विष्लृ व्याप्तौ)। जीवों को भी जीवन धारण के लिए आवश्यक धनों का वे प्रदान करने वाले हैं। सब धनों के स्वामी वे ही हैं लक्ष्मीपति हैं-'लक्ष्मी' ही हैं। अन्य व्यक्ति तो कुछ समय के लिए कुछ स्थान के स्वामी होते हैं पर ये प्रभु सदा के लिये सबके स्वामी हैं। इसी से 'महेश' कहलाते हैं-प्रभु ही 'ईश' या ईश्वर हैं-'परमेश्वर' हैं, 'विश्वेश्वर' हैं। प्रभु के रचे हुए अग्नि आदि पदार्थ 'देव' हैं तो प्रभु महादेव हैं। इन सब अग्नि आदि को देवत्व के वे ही प्रदान करने वाले हैं (**तेन देवा देवतामग्र आयन्**)। इस सृष्टि के निर्माता प्रभु ही, दिन की समाप्ति पर जैसे रात्रि आती है, उसी प्रकार सृष्टि के समय की समाप्ति पर प्रलय करते हैं। सारे संसार की समाप्ति करने के कारण वे 'काल' कहलाते हैं। स्वयं तो वे 'अकाल पुरुष' हैं। इस प्रलय के कारण ही वे उग्र रूपवाले प्रभु 'रुद्र' कहलाते हैं। इस रुद्र की शक्ति को ही 'रुद्राणी' कहा जाता है। यही शक्ति 'भवानी' व 'पार्वती' भी कहलाती है। सारे संसार को अपने में समा लेने से-रख लेने से यह भवानी है, सबका अपने में पूरण कर लेने से पार्वती है (पूर्ण पूरणे)। इस पार्वती के पति वे 'महादेव' ही हैं। इस प्रलय के समय सारा संसार उस प्रभु में ही शयन करता है। 'शेते यस्मिन्' इस व्युत्पत्ति से वे प्रभु इस समय 'शिव' कहलाते हैं। प्रभु प्रलय भी जीवों के हित के लिये ही करते हैं। जितना महत्त्व रात्रि का है, वही महत्त्व बड़े परिमाण में प्रलय का है। जीवन के लिये रात्रि भी अत्यन्त आवश्यक है, इसी प्रकार प्रलय भी। जीव अपने जीवन का प्रलयानन्तर फिर नये सिरे से निर्माण करने में समर्थ होता है। इस प्रकार प्रलय करने वाले ये प्रभु वस्तुतः 'शिव' हैं-कल्याण करनेवाले हैं। शान्ति को प्राप्त कराने वाले ये प्रभु सचमुच 'शंकर' हैं।

बन्धु-पिता-गुरु

अब प्रलय की समाप्ति पर सृष्टि के प्रारम्भ में सबको कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में बाँधने वाले ये प्रभु 'बन्धु' हैं। सबको जन्म देनेवाले ये प्रभु 'माता' व 'पिता' हैं। पिताओं के भी पिता होने से 'पितामह' व 'प्रपितामह' कहलाते हैं। प्रभु ही ज्ञान देनेवाले 'गुरु' हैं। सब विद्याओं के ज्ञाता 'बुद्ध' हैं, और सब विद्याओं का ग्रहण कराने वाले 'आचार्य' हैं।

'स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'।

इस जीवन में हमारे धारण के लिए सब वस्तुओं का निर्माण करने वाले ये 'विधाता' हैं। वेद के द्वारा सब विद्याओं का उपदेश देने वाले 'कवि' हैं। इस महान् कवि का अजरामर महान् काव्य वेद ही तो है

'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'।

अनादि-अनन्त

इस प्रकार ये प्रभु इस सृष्टि-प्रलय के क्रम को चलाते हैं। अनादि काल से यह चक्र चल रहा है, अनन्त काल तक यह चलता चलेगा। इसको चलाने वाले प्रभु भी स्थान व समय दोनों के दृष्टिकोण से 'अनादि' और 'अनन्त' हैं। 'प्रभु को कोई और बनाने वाला हो' ऐसी बात नहीं। वे तो सदा से स्वयं हैं-'स्वयम्भू' हैं-(खुद-आ) खुदा हैं, 'नित्य' हैं। सर्वव्यापक होने के नाते वे कभी शरीर में नहीं आते-'अ-ज' हैं, सदा 'मुक्त' हैं, 'निराकार' हैं। निराकार होने से उनमें किसी भी प्राकृतिक वस्तु के लेप का सम्भव नहीं, सो वे 'निरञ्जन' हैं, 'शुद्ध' हैं। अपनी व्याप्ति से सारे स्थान में पूर्ण होने से 'पुरुष' भी कहलाते हैं। सर्वत्र व्याप्त होकर सबका भरण करने वाले ये प्रभु 'विश्वम्भर' हैं। सबके अन्दर प्रविष्ट होकर रहने से ये 'विश्व' हैं। हमारे हृदयों में प्रविष्ट होकर सब कुछ जानते हैं, अन्तः-स्थित होते हुए 'अन्तर्यामी' हैं। सबका नियमन करने वाले ये 'यम' हैं।

धर्मराज

पूर्ण धर्म से शोभायमान होते हुए 'धर्मराज' कहलाते हैं। सब भग (ऐश्वर्य-धर्म-यश-श्री-ज्ञान और वैराग्य) से युक्त वे 'भगवान्' हैं। इसीलिए आश्रय करने योग्य होने से 'श्री' हैं, दर्शनीय होने से 'लक्ष्मी' हैं (लक्ष दर्शने)। सब मनुष्यों की अन्तिम शरण ये 'नारायण' ही हैं। सबसे उपासना के योग्य होने से ये 'यज्ञ' हैं। सबको अपनी व्याप्ति से आच्छादित किये हुए ये 'कुबेर' हैं (कुवति स्वव्याप्त्या आच्छादयति)। सम्पूर्ण जगत् का विस्तार करने वाले 'पृथिवी' हैं। सबके आधार होने से 'भूमि' हैं (भवन्ति भूतानि यस्याम्)।

राहु-केतु

पूर्ण ज्ञान वाले ये प्रभु 'मनु' हैं। इस संसार में ये उपासकों के हृदयों को (केतयति) प्रकाशमय करने से 'केतु' हैं। इस प्रकाश को देकर ये अशुभों से हमें पृथक् करते हैं। अशुभों से छुड़ाने के कारण ही 'राहु' हैं (राहयति त्याजयति)। इस प्रकार हमारे निवासों को उत्तम बनाने वाले प्रभु 'वसु' हैं। हमारे लिये सब आवश्यक वस्तुओं के देनेवाले 'होता' हैं (हु दाने)। सदा निर्विकार रूप से स्थित होने वाले ये प्रभु 'कूटस्थ' हैं, 'सत्' हैं। 'चित्' होते हुए हमें चेतानेवाले हैं और इस प्रकार अशुभों से बचाकर हमारे जीवनों को आनन्दित करते हैं, स्वयं तो 'आनन्द' हैं ही।

पञ्चभूत

सृष्टि के निर्माता प्रभु 'पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु व आकाश' इन पञ्चभूतों से इस संसार का निर्माण करते हैं। यह संसार पञ्चभूतात्मक है। हमारा शरीर भी पाञ्चभौतिक है। इस शरीर में भी 'पञ्चप्राण', 'पञ्च कर्मेन्द्रियाँ', 'पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ' व 'अन्तःकरणपञ्चक' (हृदय-मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार) सब पाँच ही पाँच हैं। सारा संसार ही 'प्र-पञ्च' कहलाता है। इस प्रपञ्च के अधिपति प्रभु इन गणों के ईश होने से 'गणेश व गणपति' हैं। वे स्वयं भी 'पृथिवी' हैं, चूँकि वे सम्पूर्ण जगत् का विस्तार करते हैं। इस पृथिवी से उत्पन्न होनेवाला अन्न प्राणियों का प्राणाधार बनता है। अन्तिम आधार तो वे प्रभु ही हैं-प्रभु के आधार से प्राणी अन्न को खाता है, सो प्रभु का भी 'अन्न' नाम हो गया है। ये प्रभु 'ज' जन्म से 'ल' लय (मृत्यु) तक प्राणी का आधार होने से 'जल' हैं। हमारी अग्रगति का कारण होने से वे प्रभु 'अग्नि' हैं (अग्रणी)। गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करने के कारण 'वायु' हैं (वा गतिगन्धनयोः)। समन्तात् प्रकाशमय व दीप्त होने के कारण वे 'आ-काश' हैं। निरन्तर गति के कारण ही प्रभु 'आत्मा' हैं (अत सातत्यगमने) और ज्ञान से दीप्त होने के कारण 'सूर्य' हैं। ज्ञानमय होने से ही प्रभु 'मनु' हैं। इस प्रकाशमयता को स्पष्ट करने के लिए ही 'देवी' शब्द का भी प्रभु के लिए प्रयोग होता है (दिव्-द्युतौ)।

सप्ताह

हमारे जीवन जिन वारों में चलते हैं उनमें अन्तिम वार 'रविवार' कहलाता है। 'रवि' सूर्य का पर्याय है। इससे स्पष्ट है कि हमारे जीवन का लक्ष्य भी यही होना चाहिये कि हम सूर्य की तरह ज्ञानज्योति से चमकें। इसके लिए हम 'सौम्य' बनें, यही सोमवार का पाठ है। उद्धतता हमें ज्ञान से दूर ले जाती है। इस सौम्यता ही में 'मंगल' है यही हमें बुध-ज्ञानी बनायेगी। ज्ञानियों का ज्ञानी बृहस्पति भी हमें यही बनायेगी। इस ज्ञान से हमारे जीवन पवित्र बनेंगे,

हम शुक्र (शुचि=पवित्र) होंगे। ऐसा होने पर हम जीवनों में शान्तिपूर्वक (शनैः) बिना किसी व्याकुलता से चलनेवाले 'शनैश्चर' होंगे। ये सप्ताह के नाम प्रभु का भी स्मरण कराते हैं। प्रभु 'सोम' हैं-चन्द्र हैं (सोम=चन्द्र 'Monday-moon day' चन्द्रवार) 'चदि आह्लादे-आनन्दमय हैं, उपासकों को आनन्दित करते हैं। 'मंगल' हैं 'मगि गतौ'-अपनी सब गतियों से-क्रियाओं से सबका कल्याण करनेवाले हैं। 'बुद्ध' ज्ञानी हैं। बृहस्पति हैं-बृहतां पतिः, इन महान् आकाशादि लोकों के स्वामी हैं। शुक्र हैं-स्वयं पूर्ण पवित्र होते हुए उपासकों के जीवन को पवित्र करनेवाले हैं। शनैश्चर हैं-शान्तभाव से निरन्तर क्रिया को कर रहे हैं। रवि हैं (रु धातु, To break) अन्धकार को छिन्न-भिन्न करनेवाले हैं।

शान्ति के दाता प्रभु

ये प्रभु 'मित्र' हैं, हमें रोगों से बचानेवाले हैं। 'वरुण' हैं (पापान्निवारयति) हृदयस्थ होने से प्रेरणा के द्वारा पाप का निवारण करने वाले हैं। 'अर्यमा' हैं-अर्थात् 'मिमीते' जितेन्द्रियों को मान प्राप्त करानेवाले हैं। 'इन्द्र' हैं (इदि परमैश्वर्ये) परमैश्वर्यशाली हैं अथवा हमारे शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले हैं। 'बृहस्पतिः' हैं-विशालता के स्वामी हैं। प्रभु में संकोच व अल्पता नहीं है। 'विष्णु' व्यापक हैं। उरुक्रमः-उरुक्रम हैं-विशाल पराक्रमवाले व महती व्यवस्थावाले। ये प्रभु हमें भी 'मित्रता-निष्पापता-जितेन्द्रियता-कामादि शत्रुओं का विद्रावण-विशालता-व्यापकता व व्यवस्था' का पाठ पढ़ाते हुए शान्ति प्राप्त करानेवाले होते हैं। शान्ति-प्राप्ति के वस्तुतः ये ही साधन हैं।

प्रभु के निज नाम ओ३म् की अ उ म इन मात्राओं से विराट् अग्नि, विश्व, हिरण्यगर्भ, तेजस, वायु व ईश्वर आदित्य और प्राज्ञ इन नामों की सूचना मिलती है। सब अक्षरों में 'अ' का विशिष्ट स्थान है। व्यञ्जनों की अपेक्षा स्वर महत्त्वपूर्ण हैं। स्वर '**स्वयं राजन्ते**' स्वयं प्रकाशमान हैं। व्यञ्जन तो स्वरों की सहायता से प्रकट होते हैं (व्यज्यन्ते) स्वरों में अ विशेष रूप से चमकता है, 'विराट्' है। प्रभु विराट् हैं प्रकृति व जीव की अपेक्षा विशिष्ट दीप्तिवाले हैं। 'अ' सब व्यञ्जनों में प्रविष्ट है, प्रभु भी प्रत्येक पिण्ड में प्रविष्ट हैं 'विश्व' हैं। 'अ' का अक्षरों में प्रथम स्थान है-'अग्नि' है-'अग्रणी'। प्रभु भी 'अग्नि' है। 'उ रक्षणे' उ धातु रक्षण अर्थवाली है। वायु जीवन का रक्षक है-सो 'उ' है। सर्वमहान् रक्षक प्रभु हैं, वे भी 'उ' अर्थात् 'वायु' हैं। 'उ' उत्कर्ष का वाचक है-सब ज्योतिर्मय पिण्डों को अपने गर्भ में लिये हुए प्रभु सर्वोत्कृष्ट हैं। ज्योतिर्मय पिण्डों को 'हिरण्य' कहते हैं, सो प्रभु हिरण्यगर्भ होते हुए सर्वोत्कृष्ट होने से 'उ' हैं। इस सर्वोत्कर्ष के कारण ही वे 'तैजस' हैं, वहाँ किसी प्रकार की मलिनता नहीं है। सब मलिनतायें वहाँ दग्ध हो जाती हैं। 'म' मात्रा 'मिते' मापने की सूचना दे रही है। सब पदार्थों के मापनेवाले-जाननेवाले प्रभु 'प्राज्ञ' हैं। मापने का भाव 'बनाना' भी है। इन सब पदार्थों का 'निर्माण' करनेवाले प्रभु इन पदार्थों के 'ईश्वर' हैं-मालिक हैं। अन्त में इन्हें अपने अन्दर ले लेने से 'मिनोति ह वा इदं सर्वम्' प्रभु आदित्य हैं। सबका अपने अन्दर आदान कर लेनेवाले हैं। इस प्रकार 'अ उ म्' ये मात्रायें प्रभु के विभिन्न नामों का संकेत करती हैं।

उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय

ये प्रभु स्वयं 'अक्षर' हैं-कभी नष्ट नहीं होते। इस प्रकृति के कण-कण में व्याप्त होने से ये 'आप्त' कहलाते हैं (आप्लृ व्याप्तौ)। उन प्रकृति कणों से ये सृष्टि का निर्माण करते हैं। इस निर्माण के कार्य में इन्हें किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं होती-ये स्वयं देदीप्यमान 'स्वराट्' हैं। सृष्टि का निर्माण करके उसका ये उत्तमता से पालन करते हैं 'सुपर्ण' हैं। किसी का भी अमंगल न करने के कारण ये 'प्रिय' हैं। इस संसार के महान् भार को उठाकर गतिमय होने के कारण 'गरुत्मान्' हैं। आचार्य के शब्दों में 'महान्' (गुरु) स्वरूपवाले हैं। इस अनन्त ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर लिये हुए वे सचमुच कितने महान् हैं। सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में गति करते हुए वे 'मातरिश्वा' हैं। अन्त में वे इस सृष्टि को प्रलय निद्रा में सुलाने वाले 'कालाग्नि' हैं। सबको अपने अन्दर लेकर समाप्त सा करके-स्वयं बचे रह जाने से 'शेष' हैं। 'शेष' का पर्याय वेद में 'उच्छिष्ट' भी है। 'ऊर्ध्वं शिष्यते' प्रलय हो जाने पर भी बचे रहते हैं। सब कोई सो गया, तो भी प्रभु जागते हैं 'आनीद् अवातं स्वधया तदेकम्'।

चौधरी छोटूराम, अम्बेडकर व दलित धर्म परिवर्तन

गुरप्रीत चहल

''जो यह ६ करोड़ आज हमसे जुदा हो,
जो भाई है अब फिर अदूबर मिला हो।
यह दुश्मन के हाथों में तेगे जफ़ा हो,
मुसीबत के फिर वार मिल्लत पै क्या हो।।''

आर्य कवि पं. चमूपति जी की ये पंक्तियाँ दलितों की दुर्दशा व धर्म परिवर्तन को लेकर मिल्लत (हिन्दू जाति) को सचेत कर रही हैं, जगा रही हैं पर हिन्दू जाति है कि बेपरवाह की नींद सोए पड़ी है। हजारों सालों से अपने ही शरीर के एक हिस्से को दाना-पानी देना बन्द कर रखा है। वह नि:सहाय हिस्सा कहता है-

''अभी वक्त है हमको अपना बना लो,
जो जख्म आज मिलता है उसको मिला लो
नहीं तो कल उसको न तुम भर सकोगे
अजल चारा का, चारा (इलाज) क्या कर सकोगे।''

१९वीं सदी में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने दलितों के हकों की आवाज बुलन्द की व उनके लिए शिक्षा व वेदज्ञान की वकालत की। स्वामी जी व उनके आर्यसमाजी शिष्य जानते थे कि दलित ही हिन्दू जाति की नींव हैं, पैर हैं। कश्मीर के ब्राह्मण इस्लाम अपना गए, संयुक्त पंजाब (१८९१) के राजपूत (पहाड़ी राजपूतों के अलावा) सारे ही हिन्दू धर्म छोड़ गए, लाखों पंजाबी गुर्जर व पंजाबी जाट जो कि धर्मरक्षक होने का दावा करते थे इस्लाम में दीक्षित हो गए। पर दलित वर्ग में ज्यादातर ने इस प्यारे धर्म को नहीं छोड़ा। संयुक्त पंजाब के ११ लाख ८८ हजार १८ चमारों में से केवल १९ हजार ७३२ ही मुस्लिम बने थे।[१] पर कालान्तर में दलितों में २-३ बड़े नेता पैदा हुए जिनमें से एक थे डॉ. अम्बेडकर। मौजूदा सामाजिक नियमों से वे खफा थे, क्योंकि उत्तर भारत में तो आर्यसमाज दलितों की आवाज उठा रहा था। स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भक्त फूलसिंह, शहीद रामचन्द्र, चौधरी मेघराज आदि अनेकों आर्य सिपहसालार दलितोद्धार में लगे हुए थे। खुद बाबा अम्बेडकर ने कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द जी दलितों के सबसे बड़े हितैषी व हीरो हैं।[२] परन्तु आर्यों को छोड़कर शेष हिन्दू जाति इस मुद्दे पर खामोश थी। जिस कारण अम्बेडकर जैसे दलित नेता इस खामोशी से क्षुब्ध होकर दलितों के हिन्दुओं से अलगावाद की माँग करने लगे। जिस पर गाँधी जी अड़ गए व अम्बेडकर को हार माननी पड़ी। राजनीतिक अलगाववाद न मिलने पर अम्बेडकर ने धार्मिक अलगाववाद की राह पकड़ी। वे तथा उनके साथी जगह-जगह दलितों को हिन्दू धर्म को छोड़ने का आह्वान करते। हिन्दुओं को तो इस पर भी कोई फर्क नहीं पड़ा। पर ऋषि दयानन्द के शिष्य व हिन्दू धर्म के सच्चे सेवक चौधरी छोटूराम आर्य के दिल को इससे ठेस पहुँची। उस समय उनका नाम उत्तर भारत के बड़े नेताओं में लिया जाता था। जमींदारों के साथ-साथ दलित व मजदूरों के भी वे सबसे बड़े नेता थे। जबकि उस समय तक उत्तर भारत में अम्बेडकर की पहुँच नहीं थी। हरियाणा क्षेत्र के सबसे बड़े दलितोद्धारक भक्त फूलसिंह आर्य[३] संग वे खुद दलितोद्धार कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे। जिस कारण उत्तर भारत के दलित राजनीतिक तौर पर उनको अपना एकमात्र नेता मानते थे। अम्बेडकर साहब के इस रवैये को देखकर उन्होंने बाबा साहब को एक 'ऐतिहासिक' लेख लिखा था। जो कि 'The Tribune' के ९ नवम्बर १९३५ के अंक में छपा था।[४] उस 'ऐतिहासिक' लेख में चौधरी साहेब ने हिन्दु धर्म के मूल को समझाया व दलितों के लिए सबसे उपयुक्त यही धर्म है इस पर रोशनी डाली। उस लेख का कुछ मुख्य हिस्सा इस प्रकार था-

''डॉ. अम्बेडकर एक शिक्षित व स्वाभिमानी पुरुष हैं। वे तथा उसके समर्थक जगह-जगह बड़े धर्म-परिवर्तन का आह्वान करते हैं।... आज के कठोर सामाजिक नियमों के कारण दलितों के साथ जो अन्याय हो रहा है इससे डॉ. अम्बेडकर जैसे स्वाभिमानी को ठेस पहुँचना लाजमी है पर उनका यह सोचना गलत है कि हिन्दुत्व के मूल सिद्धान्त इस 'अन्याय' की आज्ञा देते हैं या जायज ठहराते हैं। भगवद् गीता के अनुसार तो ब्राह्मण से लेकर चांडाल, हाथी, गाय, कुत्ता आदि एक तत्त्वदर्शी व ज्ञानी की नजर में एक समान है। पिछली कुछ सदियों में आए दोष, हिन्दुत्व की उन महान् शिक्षाओं, जोकि हर चीज में उस 'सर्वव्यापक' को देखती हैं व हर वस्तु को उस परमात्मा के प्रति निष्ठावान् समझती हैं, के

ऊपर वे (दोष) भारी नहीं पड़ सकते।

...मैं नहीं समझता कि इससे बढ़कर आध्यात्मिक सत्य व शान्ति किसी अन्य धर्म में मौजूद/प्रस्तुत है।[५] डॉ. अम्बेडकर को हिन्दु धर्म की जड़ देखनी चाहिए, बीज देखना चाहिए, छिलका नहीं। हाँ, अगर डॉ. साहब सोचते हैं कि उनको अन्य मजहब में इससे बढ़कर सिद्धान्त मिलेंगे तो उनको पूरी आजादी है, परन्तु वे हताश-निराश होकर धर्म छोड़ रहे हैं तो उनको कर्त्तव्य से भागा हुआ आरोपी समझा जाएगा। यह भी समझना होगा कि कुछ दलितों के धर्म परिवर्तन से अन्य सभी दलित अपने बाप-दादाओं का मजहब नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि धर्म कोई कपड़े की भाँति बदला नहीं जाता।

...यह बात भी नोट करने योग्य है कि अन्य मजहबों में जो बराबर के हकों की बात की जाती है वे धरातल पर नहीं मिलते।[६] उनकी बातें (हकों की) थ्योरिकल ज्यादा हैं, प्रैक्टिकल नहीं। बेशक कुछ एक शिक्षित दलितों को हक मिल भी जाए पर बाकि दलितों को इससे (धर्म-परिवर्तन से) निराशा ही हाथ लगती है। साथ ही नए संविधान में जो हिन्दू हरिजनों को हक मिले हैं क्या आप उन्हें गंवाना चाहते हैं? क्योंकि संविधान के अनुसार केवल हिन्दू हरिजन ही इसका लाभ ले सकते हैं, अन्य नहीं''

डॉ. अम्बेडकर को लिखे इस 'ऐतिहासिक' लेख के अलावा चौधरी छोटूराम ने दलित समस्या पर अनेकों लेखों द्वारा हिन्दू जाति को जगाने का प्रयास किया। वे कहते थे ''हमें शर्म आनी चाहिए कि हम अपने ही भाइयों को अछूत कहते हैं। मुसलमान व ईसाई आज दरवाजे पर इन भाइयों को ले जाने के लिए तैयार खड़े हैं पर उनको दोष कैसे दे दें? हिन्दुओं को चाहिए कि वे नींद से जागें वरना बर्बादी तय है व ईश्वर भी ऐसी कौम (हिन्दू कौम) को गुलाम ही रखेगा जो अपने ही भाइयों को वेद-ज्ञान व सम्मान का हक नहीं देते। आर्यसमाज ने इस पर बड़ा काम किया है, अब और करने की (तेजगति से) जरूरत है।''

चौधरी साहब खुद बड़ी रुचि से दलितोद्धार में भाग लेते थे। चाहे राजनैतिक रूप से मोठ आन्दोलन में दलितो को हक (कुएँ पर चढ़ने का) दिलवाना हो या रोहतक में दलित भाइयों को शुद्ध कराकर वापिस हिन्दूधर्मी बनाना हो[७] या मुल्तान में दलितों को जमीनें बाँटनी हो। मौजूदा वक्त में भी ईसाइयों ने भोले-भाले दलित भाइयों को फँसा रखा है। पंजाब-हरियाणा में तेजी से ये फैल रहे हैं। इस पर आर्यों व हिन्दुओं को चाहिए कि दलित भाइयों को पूरा मान-सम्मान देवें, गाँव-शहरों में दलित बुजुर्गों को सार्वजनिक तौर पर पगड़ी आदि पहनाकर मान-सम्मान किया जावे। चमूपति जी की पंक्तियों से समापन की ओर बढ़ता हूँ-

''यही शूद्र हैं आज ताकत हमारी
है मौकूफ इन पर हिफाजत तुम्हारी,
रही गर यह उनसे अदावत तुम्हारी
बिकेगी जमाने में इज्जत तुम्हारी,
रहोगे न देखेंगे इज्जत बचाकर
तुम्हें पीस डालेंगे अगयार आकर।''

सन्दर्भः

(१) Census of India, 1891, Vol. XX, The Punjab and its Feudatories, Part II

(२) देखें डॉ. अम्बेडकर की पुस्तक " What Gandhi and Congress have done to Untouchables."

(३) भक्त फूल सिंह का 'मोठ आन्दोलन' विख्यात आन्दोलन था जो कि सतटोल खाप के नारनौद नामक जगह (जिला हिसार) पर हुआ था। मोठ व नारनौद दोनों ही मेरे गाँव माढा के साथ हैं।

(४) Sir Chhotu Ram: Writings & Speeches, Vol. II, Published by- Haryana Academy of History & Culture.

(५) चौधरी साहब ने एक लेख " Religion in India नाम से भी निकाला था। जिसमें उन्होंने हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुए कहा था कि ''हिन्दू धर्म कोई खालिस मजहब नहीं, यह अनेक पन्थों व विचारधाराओं का समूह है। नास्तिक-आस्तिक, पत्थर, पेड़, पितर-पूजक, एकदेव व बहुदेव वादी सभी इसमें समाए हैं। सबको आजादी है। इससे बढ़कर और क्या चाहिए?''

(६) आजादी से पूर्व कुछ सिख हरिजनों ने भी सिखों में (इस्लाम हेतु) जातिवाद से तंग आकर जिन्नाह को पत्र लिखा था। देखें " Jinnah Letters" Ed. by ZH. Zaidi

(७) ''जाट वीरों का इतिहास, पेज नं. ९३०'' लेखक कैप्टन दलीप सिंह अहलावत (अहलावत साहब उस शुद्धि सभा में स्वयं मौजूद थे।)

हिन्दुओं की भावी पीढ़ी का भविष्य

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

हिन्दू धर्म या शब्द या नाम प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। प्राचीन ग्रन्थों में वैदिक-धर्म वा आर्य-धर्म वा सनातन-धर्म का वर्णन है। भारत पहले आर्यावर्त्त कहाता था। आर्यावर्त्त सबसे प्रथम भूमण्डल का मात्र एक ही राष्ट्र था। अन्य कोई राष्ट्र नहीं थे। क्योंकि सर्वप्रथम तो पृथिवी पानी में डूबी थी। पानी में जो भूभाग ऊपर था उसी पर फल-फूल, पशु-पक्षी, वनस्पति आदि सहित समस्त सुख सुविधाएँ उपस्थित होने के बाद सर्वप्रथम मनुष्यों को परमात्मा ने अपने अनन्त बल एवं ज्ञान के साथ प्रकट किया। ईश्वरीय व्यवस्था में असंख्य नर-नारी युवावस्था में ही प्रकट किये गये। उस मानव समाज को 'आर्य' नाम से कहा गया। उसी अमैथुनी सृष्टि में चार पवित्रतम मुक्त आत्मायें चार ऋषियों के रूप में प्रकट हुई- १. अग्नि, २. वायु, ३. आदित्य, ४. अंगिरा। पाँचवें ब्रह्मा प्रकट हुए। अन्य भी धर्मानुरागी स्त्री-पुरुष हुए। चार ऋषियों की आत्मा में चार वेदों का अर्थ सहित ज्ञान परमब्रह्म परमात्मा ने प्रकट किया। चारों ऋषियों में अग्नि ऋषि ने ऋग्वेद, वायु ऋषि ने यजुर्वेद, आदित्य ऋषि ने सामवेद, अंगिरा ऋषि ने अथर्ववेद- ब्रह्माजी व अन्यों को सुनाया। ब्रह्मा ऋषि चारों वेदों के विद्वान् हुए। बाद में गुरु-शिष्य परम्परा से महर्षि दयानन्द पर्यन्त वेदों का पठन-पाठन चला आया।

महाभारत के जैमिनि मुनि के हजारों वर्षों बाद इस परम्परा में एक ऋषि दयानन्द आधुनिक काल में आया, जिसने सुप्त वेदज्ञान को पुनः उजागर कर दिया। उसके कार्य की धूम मची, जिससे मानवता को उत्थान की समग्र दिशा मिली। १८८३ ई. से दयानन्द के निर्वाण की अर्द्ध शताब्दी १९३३ ई. तक उसके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज ने मानवोत्थान एवं सनातन सद्धर्म की रक्षा का अनुकरणीय कार्य अवश्य किया, परन्तु शनैः शनैः उसी आर्यसमाज संगठन में शिथिलता आ जाने के परिणामस्वरूप वह अकर्मण्यता का शिकार होता गया। क्योंकि सद्धर्म-प्रचार की लालसा लिये उसके दीवानों ने अपने स्वयं के परिवारों का ध्यान नहीं रखा- तो फिर ऐसी स्थिति में आर्यसमाजियों के बच्चे कब तक आर्यसमाजी बनते, पर यह स्थिति विराट हिन्दू समाज में व्याप्त एवं छा चुके इसके तथाकथित रक्षकों द्वारा अपने सबसे बड़े हितैषी दयानन्द के उपकारों को न मानने और न अपनाने के कारण ही उत्पन्न हुई। आज हिन्दू समाज उसी कृतघ्नता के पाप से बोझिल है तथा इस विकट परिस्थिति से उबारने वाला एक भी व्यक्ति क्रियाशीलता से उभर कर आने में स्वयं को असहाय पा रहा है। जाने कब इस समाज को जीवन्त करने को कोई भी एक व्यक्ति आगे आकर दिशाबोध करायेगा? सच कहूँ तो स्थितियाँ दो तरह की होती हैं- एक, हमारे वास्तविक हितवाले कौन हैं एवं वेदोक्त सनातन धर्म के अनुसार उनके द्वारा प्रदत्त दिशा क्या है? एवं दूसरी स्थिति वह है जिसमें हमें एवं हमारे समाज के लोगों को आभास होता है कि अमुक लोग या अमुक संगठन हमारे रक्षक हैं यद्यपि वास्तविकता से दूर यह मात्र आभास ही है। जाति का भला तो आभास वाली स्थिति से नहीं वास्तविकता के धरातल पर ही हो सकेगा और इसे जितना जल्द जाना जायेगा, हमारा कल्याण भी उतना शीघ्र होगा। पर यह स्थिति आयेगी कैसे? आज तो दुनिया के लोग भले ही दयानन्द के विचारों से दिशा लेकर अपने नाम से उन बातों को प्रस्तुत करें किन्तु स्वयं आर्यसमाज में दयानन्द के महान् मिशन को समझने, अपनाने वालों की लगता है कोई पूछ नहीं रह गयी है। यही नहीं मिशनरी भाव रखने वाले के प्रति वहाँ उपेक्षा की जाने लगी है तो फिर दयानन्द के उस मिशन की रक्षा भी क्योंकर होगी। यह प्रश्न हल करना भी आवश्यक है, क्योंकि आज पुनः दयानन्द और उनकी परम्परा वाले विद्वानों की बात पर आकर ही देश, जाति, सभ्यता, संस्कृति का कल्याण जो समस्त मानवता के कल्याण का कारण हो सकेगा, संभव है।

महाभारत काल तक पूर्णरूप से वैदिक-धर्म नाम से धर्म का प्रचार-प्रसार होता रहा। मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई फिरका, सम्प्रदाय नहीं था। सभी मनुष्य वैदिक-धर्म का ही पालन करते थे, हाँ, विष्णु के कार्यकाल में इसे

हरिवर्ष भी कहते थे। बाद में महाराज भरत के समय से आर्यावर्त्त का नाम भारतवर्ष हो गया। यवनों ने यहाँ आकर इसे 'हिन्दुस्तान' कर दिया। ईसाइयों ने हिन्दुस्तान को 'इण्डिया' कर दिया। आजादी के बाद भारतीय संविधान में भारतवर्ष के स्थान पर देश का नाम 'भारत' कर दिया। आजादी के बाद भारतीय संविधान को INDIA, that is, BHARAT के नाम से विश्व समुदाय ने जाना।

प्रलय के बाद जब सृष्टि बनती है तो आवश्यक नहीं हर मनुष्य एक समान हो। सतोगुणी मनुष्य देव कहलाते हैं। वे वेदों का अक्षरशः पालन करते हैं। रजोगुणी व्यक्ति अपने विचारों से उत्पन्न ग्रन्थ भी रचते हैं और अपने ग्रन्थों के आधार पर दूसरों को चलाते हैं। तमोगुणी व्यक्ति धर्म तो मानते हैं, परन्तु पूर्णरूप से अपनी बात मनवाने के लिये। वैदिक-धर्म का विरोध करते हैं, वेदों को छिपा देते है, जला देते हैं। वैदिक-धर्म का पालन करने वालों को मार देते हैं या मरवा देते हैं। वेदों में जिस नाम से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना होती है उसे बन्द करवा दिया जाता है। वैदिक यज्ञादि निष्काम कर्म भी बन्द करवा दिये जाते हैं। तमोगुणी जिसे दानव या राक्षस कहते हैं, वह अपने को भगवान्, पूज्य, परमपूज्य, सर्वश्रेष्ठ जैसे नामों से घोषणाएँ करवा देते हैं। वे राक्षस आर्यों के आर्यावर्त्त पर कब्जा कर अनार्यों का शासन लागू करते हैं। आर्यों (देवों) को बन्दी बना लेते हैं। अनार्य शासन करते हैं। आर्यों को सिर भी उठाने नहीं देते। यहाँ तक कि आर्यों को मार-मार कर खा जाते हैं।

आर्यों की पूजनीया गो माता (गोवंश) जो विश्वमाता, अघ्न्या अर्थात् जिसे मारा नहीं जाता अपितु पूजा जाता है उसे ही मार-मार कर माता का ही मांस खाते हैं। वे ही शास्त्रों के अनुसार अनार्य (=दानव=राक्षस) हैं। इस तरह आयावर्त्त और अनार्यावर्त्त अर्थात् शेष भूभाग यानि एक विश्व राष्ट्र के आध्यात्मिक दृष्टि से दो टुकड़े हो गये। आर्यावर्त्त में श्रेष्ठ लोग (देवलोग) रहते थे जो वेदों को मानते थे। वैदिक धर्मावलम्बी थे। धीरे-धीरे पृथिवी पानी से खाली होती गई और आर्य तथा अनार्य दोनों ही मूलस्थान तिब्बती क्षेत्र से नीचे आने लगे। हरिद्वार तक आर्य आ गये और अनार्य तिब्बत के विपरीत दिशा में जाकर बसने लगे। कहीं-कहीं आर्यों के क्षेत्र में अनार्य आ गए तो कहीं अनार्यों के क्षेत्र में आर्य चले गये। दूसरे जो दुष्ट अपराधी नास्तिक थे वे आगे चलकर अनार्य, मांसभक्षी, नरभक्षी, गोभक्षी, राक्षसी अनार्या आर्यावर्त पर शासन करने लगे।

आस्तिक, नास्तिक मिश्रित होने लगे। महाभारत के बाद मिश्रित का जमाना आ गया। दानव तान्त्रिक बने, पौराणिक बने, आर्य वैदिक सनातन धर्मावलम्बी बने।

सनातन वेद हैं और वेद पूर्ण सत्य हैं। इसलिये सत्य सनातन वैदिक धर्म कहलाया। अनार्यों के अनेक फ़िरके बने। मिश्रित मनुष्यों के अनेक सम्प्रदाय बने। अब इतने सम्प्रदाय हैं कि उनका गिनना भी असम्भव हो गया है। उनके मूल-मूल सिद्धान्त क्या हैं, इसे जानना भी कठिन हो गया है।

महान् प्रतापी महाराज विक्रमादित्य तक तो कुछ-कुछ वैदिक धर्म की परम्परा राष्ट्र के अन्दर मान्य रही। विक्रमादित्य के बाद मानवरचित सम्प्रदाय बने। हममें से ही बौद्ध, जैन निकले। उसके बाद छोटे-छोटे सम्प्रदाय निकले, जिनसे अपने-अपने गुरुओं के द्वारा कथित वाणी का प्रचार-प्रसार हुआ। फिर भी सनातन धर्म सबको प्यारा था। मिक्सचर पर मिक्सचर होता गया, बाद में मिश्रित राष्ट्र बनने लगे।

दानवों में विचार-भिन्नता बढ़ी और दानवों ने भी अपने फ़िरके बनाये। सब अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने लगे।

इस प्रकार राक्षसों के अनेक सम्प्रदाय धर्म मानकर प्रचारित हुए। मानवों के भी अनेक सम्प्रदायों के नाम चले, जिन मतों को बाद में धर्म (?) का रूप दे दिया गया।

सत्य सनातन वैदिक धर्म को मानने वाले देवता मिलकर तो रहे, परन्तु उनकी शक्ति कम होती गई और उन पर असुरों ने शासन करके वैदिक संस्कृति को तहस-नहस कर दिया। दिव्य वैज्ञानिक ग्रन्थों को जला डाला, पानी में बहा दिया, देवों को भरता बनाकर खा गये। थोड़े बहुत देवता बचे, वे कन्दराओं में छिपे साधना करते वहीं से स्वर्ग सिधार गये। उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थों का ठीक-ठीक प्रचार-प्रसार तक नहीं हो पाया। उन्हें भी राक्षसों ने नष्ट ही किया।

वर्तमान भारत में १० प्रतिशत सतोगुणी लोग हैं, २० प्रतिशत रजोगुणी लोग, ७० प्रतिशत तमोगुणी लोग हैं। अर्थात् १० प्रतिशत देवता, बीस प्रतिशत मानव, सत्तर प्रतिशत तमोगुणी राक्षस-वृत्ति के हो गये हैं। शासन बहुमत के आधार पर तमोगुणी लोगों का होने से, वेदों का पठन-पाठन तो बन्द सा ही है। उपनिषद्, दर्शन का पठन-पाठन भी बहुत कम रह गया है।

दुर्भाग्य है कि तान्त्रिकों, दानवों के लिखे ग्रन्थों को मानवों ने भी अपना लिया है, वेदों को वे भी छोड़ रहे हैं। बहुमत के साथ जीने की कला उन्हें आ गई है। अहा! मानव अब देवों का विरोधी बनकर दानवों के साथ जुड़ गया है।

अब अधिक से अधिक दानवी संस्कृति, अभद्र (दानवी) भोजन व पेय पदार्थों का विशेष प्रचलन हो रहा है। इससे होने वाली क्षति का हम अनुमान भी नहीं कर रहे हैं।

पारिवारिक सामाजिक मर्यादायें काँच की तरह टूट रही हैं। महर्षि मनु की मनुस्मृति (मानव धर्मशास्त्र) को जलाया जा रहा है। वेद जो सब धर्मों का मूल है, उसका मात्र नाम लिया जाता है। पठन-पाठन व अभ्यास तो मानवकृत ग्रन्थों के आधार पर ही हो रहा है। परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना भी ऋषियों व मानवों द्वारा रचित ग्रन्थों को मिश्रित करके ही की जा रही है। लोग सनातन धर्मावलम्बी अपने को कहते हैं, परन्तु वेदोक्त सनातन नियम पालने का ध्यान रखते नहीं।

परिवर्तन का बड़ी नदी की तरह प्रवाह बढ़ता जा रहा है। धर्म की पक्की शिलायें टूट-टूटकर बहती जा रही हैं। सामाजिक नियम सब ढोंग कहकर त्यागे जा रहे हैं। दानवों के मर्यादाहीन नियमों को पाला जाने लगा है। न्यायाधीश भी दानवों के पक्ष में दानवी संस्कृति के पक्ष में फैसला सुनाने लगे हैं। कानून-निर्माताओं द्वारा कानून प्रायः दानवों को खुश करने के लिये, दानवी हित में बन रहे हैं। मानवीय या दैवी नियमों का लोप किया जा रहा है। जंगली (अपूज्य) जानवर तो बचाये जाते हैं, बचाये जाने भी चाहिए। पूज्य किन्तु सर्वोपयोगी गोमाता अपने वंश यथा- बछिया, बछड़ा, बैल, सांड सहित सम्पूर्ण गोवंश काटा जा सके, ऐसी कानून की व्याख्यायें की जा रही हैं- देश के गोधन तक को बचा पाना कठिन हो गया है- इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा?

कानून को लागू करने वालों द्वारा आज व्यवहार रूप में उन्हीं कानूनों को लागू किया जा रहा है जिससे मात्र दानवों को अर्थ-लाभ हो। थोड़ा-थोड़ा मानवों का हित हो। परन्तु देवों के उत्तम नियम मान्य न किये जाएँ। देवों को जेल भेजा जाए, मारा-पीटा जाए, उन्हें साम्प्रदायिक कहा जाए, सेक्युलर विरोधी कहा जाये- ऐसी परम्परायें शुरू की जा रही हैं। सत्य को दुष्टता का अस्त्र बना लिया गया है। यदि प्रवाह के तट पर बैठ कर देखें तो ऐसा लग रहा है कि वेद कराह रहे हैं, वैदिक धर्म रो रहा है। अनार्यों के मत धर्म के नाम पर फल-फूल रहे हैं।

वेदज्ञान में नहाने वाले इने-गिने लोग ही बचे हैं। बड़े-बड़े विद्वान् व्यापारी बन गये हैं, बड़े-बड़े वीर कायर हो चुके हैं। धर्मात्मा सो गये हैं। जो जाग रहे हैं वे मनोरंजन, कहानी, गीत सुनाने में लग गये हैं।

ऋषि-मुनि कन्दराओं में चले गये हैं। व्यापारी योगी बन घूम रहे हैं। हमारी वर्तमान पीढ़ी धर्म से अनभिज्ञ है। भविष्य की सन्तान क्या होगी? यह विचारणीय बात है। आज के लोगों ने व्यापार द्वारा धन कमाना ही मुख्य मान लिया है। पहले लोग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि के लिये गृहस्थ में प्रवेश करते थे। क्रमशः धर्म का पालन करते एवं धर्मपूर्वक धन कमाते थे। ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहस्थ बनकर सुसन्तान पैदा करते थे, ऐसी सन्तान जिससे कुल का नाम रोशन होता था। सुसन्तान माता-पिता ही नहीं सम्पूर्ण कुल को तारने वाली होती थी।

आज की सन्तान कुशिक्षित है। सुशिक्षा विहीन है। अतः वह नेता, वकील, प्रोफेसर, व्यापारी, एस.पी., कलेक्टर तो बन जाती है, मनुष्य बनने से वंचित रह जाती है। शराब पानी के रूप में, मांस भोजन के रूप में ग्रहण करने लगे हैं। उन्हें शिक्षा ही नहीं दी गई कि मांस खाना कितना बड़ा अपराध है और नैतिक पतन का बड़ा कारण है। व्यभिचार करना मनोरंजन के रूप में फैलता जा रहा है। व्यभिचारी सन्तान, मांसाहारी सन्तान, शराबी, जुआरी हर प्रकार के अपराधों में प्रवृत्त रहने वाली सन्तानें क्या माता-पिता, गुरु

का उद्धार कर सकेंगी? उनकी कीर्ति को ऊँचा उठा सकेंगी? कहते हैं, ऋषि पुलस्त्य के नाती रावण ने सात पीढ़ी के नामों को नरक में डलवा दिया। वहीं राम जैसे दशरथनन्दन ने कितनी पीढ़ियों को तार दिया। माता-पिता को शाप-मुक्त करवा दिया।

यदि श्रीराम श्रेष्ठ थे तो दशरथ भी धर्मात्मा, सत्यव्रती, महाव्रती राजा थे। तभी उनके यहाँ दिव्यात्मा का अवतरण हो सकता था।

पहले हम स्वयं सुधरें फिर अपनी सन्तान का निर्माण कर उसे देवता रूप बनायें। आम के पेड़ में कड़वे नीम का फल तो नहीं लगेगा। कड़वे नीम के पेड़ में मीठे सेव का फल तो नहीं लगेगा। माता-पिता धर्मात्मा हैं, श्रेष्ठ हैं, आर्य हैं तो सन्तान आर्य (श्रेष्ठ) ही होगी। यदि पिता-माता आर्य नहीं अनार्य हैं, जैसे- मांसाहारी, शराबी, व्यभिचारी पापी हैं तो उनके गर्भ में पवित्र आत्मा का प्रवेश कैसे होगा? उनके घर में उत्तम सन्तान कैसे आयेगी? यह सब नितान्त चिन्तनीय है।

अच्छी भूमि में, अच्छे पर्यावरण में अच्छी फसल होती है। भूमि खराब, पर्यावरण खराब है तो बीज ही नष्ट हो जाएगा।

अहा! हम पैसों के लिए धन-सम्पदा, मकान एवं कुर्सी के लिये सारा जीवन लगा देते हैं, सन्तान के निर्माण के लिये विचार भी नहीं करते। बस मनोरंजन करते-करते धोखे से अनचाहा जीव गर्भ में आ गया। उसे कभी तो मार देते हैं, कभी भारी मन से पाल लेते हैं। हमें धन चाहिये, धन ही मात्र हमारा लक्ष्य हो गया है, इस उद्देश्य से उसे शिक्षा देकर धन कमाने योग्य बनाते हैं। धन कमाने की शिक्षा भी देते हैं। हम नहीं जानते कि धन तो हमारे अपने ही बच्चों को पागल बना देगा। स्वयं भी धन के नशे में पागल माता-पिता की सन्तान महापागल बन जाती है। आत्मा-परमात्मा के विचार को व्यवहार रूप में हम संसार से निकाल देते हैं।

आर्य पिता-माता अपनी सन्तान को गुणों में अपने से श्रेष्ठ बनाने का संकल्प करते हैं। संकल्प से यज्ञ करते हैं, यज्ञ से यज्ञरूप सन्तान को पैदा करते हैं। हम क्यों भूल रहे हैं कि हमारे पूर्वज वेदों के ज्ञान से, यज्ञ से सन्तान को देवता बनाते थे। अपना कर्त्तव्य पूरा करते थे।

आज़ादी के ७० वर्ष बाद भी सन्तान यदि अपने धर्म, मर्यादा को तोड़ने वाली होती जा रही है तो १०० वर्ष बाद की सन्तान का क्या होगा? हमारी सन्तानों ने जिस कल्पित धर्म की रचना करने की ठान ली है, वह तो विनाशकारी प्रवृत्ति मात्र है- तब उनके द्वारा रचित व कथित धर्म भी विनाशकारी ही होगा।

अपनी भाषा, खानपान, पहनावा, रीति-रिवाज यदि अभी से राक्षसी हो रहे हैं तो भविष्य की सन्तान तो महाराक्षस ही होगी।

अपनी सन्तानों के दोष हमें इसलिये नहीं दीखते क्योंकि हम स्वयं दोषी हैं। धन वास्तव में सम्पत्ति नहीं है वह मात्र विनिमय का साधन है। सम्पदा तो उत्तम सन्तान ही है। क्या आपने अपने भावी उत्तराधिकारी के विषय में सोच-विचार किया? उत्तम भाव किया? यदि नहीं तो बात सही है कि आप सब प्रकार हारे एवं गिरे हुए हैं, क्योंकि आप अपनी सन्तान को ही श्रेष्ठ नहीं बना पाये तो किसको श्रेष्ठ बनाओगे। दूसरों से उतना प्रेम होगा नहीं। अपने से तो मोहरूपी प्रेम होता भी है। वह ही नहीं बन पाया तो पराये को बिगाड़ ही सकते हैं, बनाना तो स्वप्न मात्र है।

यह सभी जानते हैं कि बिना बनाये न कोई चीज बनती है न बिना बिगाड़े बिगड़ती है। तो बिना श्रेष्ठ सन्तान के निर्माण किये सन्तान श्रेष्ठ कैसे बनेगी? हमीं लाड़-प्यार, मोह के वशीभूत होकर अपनी सन्तानों को, खान-पान में मस्त दुनिया को देखकर या शत्रु रूपी डॉक्टर के कहने पर मांसभक्षी बनाते हैं, फिर सन्त आकर मांस-भक्षण को छुड़ाने की बात करें तो उल्टे तर्क-वितर्क कर बैठते हैं। जब निर्माण का समय होता है तब उत्तम संस्कार के बजाय बुरे संस्कार डाले जाते हैं। बड़ा होकर जब बिगड़ जाता है तो उसे सुधारने की सोचते हैं। वह सुधरता तो नहीं उसके विपरीत टूट जाता है।

आप अपने कर्णधार हैं, कर्म के स्वयं निर्माता हैं, सृजनकर्त्ता हैं। यदि अभी होश में आ गये तो ठीक अन्यथा निश्चित मानिये, दीर्घकाल तक की बेहोशी की अवस्था में ही जीवनलीला समाप्त करके मूढ़, भोगी, कीट, पतंगों की योनि का भोग भोगते रहेंगे।

भूतकाल को भूल जाओ, वर्तमान भी गुजर जाएगा। भविष्य ही वर्तमान बनकर आयेगा और आपको बिच्छू की तरह डंक मार-मारकर पीड़ित करेगा। अत: अपने आने वाले भविष्य को न भूलें, अब तो अविलम्ब उसे संवारने की सोचें। वर्तमान में ही भविष्य का निर्माण करें। अपने भविष्य की रचना के लिये यदि कोटिश: कष्ट उठाने पड़ें तो भी वे सब सुखदायी ही होंगे, दु:ख के बाद ही सुख देने वाले होंगे। वर्तमान को बिगाड़ने में भले उतना कष्ट न हो, परिश्रम न करना पड़े, सुख का साम्राज्य देने वाले हों, स्वर्ग की तरह सुख की वर्षा करने वाले हों तो भी उनका परिणाम नरक के दु:ख के समान पीड़ा देने वाला होगा। हर मनुष्य को कर्म के परिणाम के विषय में सोचना चाहिए। बिना कर्म या विचार के तो कोई क्षण खाली नहीं रहेगा, न ही मन एक क्षण के लिये भी संकल्प से परे होगा। तो आओ! मन के संकल्प उत्तम भविष्य के निर्माण के लिये करें। उत्तम बुद्धि के उत्तम विचार भविष्य की निधि को एकत्र करने के लिए हों। भविष्य स्वर्ण के समान चमकीला हो, मोती के समान उज्ज्वल, मधु के समान मीठा, कमलवत् कोमलता व सुगन्धयुक्त तथा कमल के पत्ते की तरह हमें संसार से अलिप्त बनाने वाला हो। ख्याल रहे यदि जीवन कमल के समान हुआ तो बन्धन स्वयं बन्धन में पड़ जायेगा और आप स्वयं को मुक्ति-सुख की ओर ले जा सकेंगे, जो नि:सन्देह मनुष्य का साध्य है।

ओमानन्द योगाश्रम, गाँधीनगर
इन्दौर, म.प्र.।
(सौजन्य से राजेन्द्र मिश्रा, बाली-हावड़ा)

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

२७ फरवरी २०२०- परोपकारिणी सभा का स्थापना दिवस

०६ अक्टूबर २०२० - डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

राम के मार्ग पर चलें या कृष्ण के

संजय मोहन मित्तल

एक पीढ़ी का पाखण्ड अगली पीढ़ी के लिए परम्परा बन जाता है और हम तो सौ से अधिक पीढ़ियों की रूढ़ियों को ढो रहे हैं। अपने गौरवपूर्ण इतिहास के महानुभावों की पूजा करना हमारा कर्तव्य है, परन्तु पूजा उनकी मूर्ति को सजाकर, आरती उतारकर की जाये या फिर उनके द्वारा निर्देशित आदर्शों को अपने जीवन में उतारकर? एक गुरु के दो शिष्य हैं। एक जो गुरु की सेवा में तत्पर रहता है, प्रतिदिन उनके पाँव दबाता है, परन्तु उनके दिये ज्ञान को नहीं समझता और दूसरा जो हर क्षण गुरु से ज्ञान-प्राप्ति के लिए लालायित रहता है। उनसे न सिर्फ ज्ञान प्राप्त करता है, परन्तु उसको समझकर अपना ज्ञान बढ़ाता है। जीवन भी उसी प्रकार यापन करता है। इनमें से गुरु का प्रिय शिष्य दूसरा ही है जो गुरु के ज्ञान की परम्परा को आगे बढ़ाता है।

हिन्दुओं के सामने भी आदर्शस्वरूप दो चरित्र हैं, रामायण के श्रीराम और महाभारत के श्रीकृष्ण। इनकी पूजा प्रायः सभी हिन्दू करते हैं, परन्तु बहुत कम ही इनके आदर्शों का अपने जीवन में पालन करते हैं, बल्कि ज्यादातर तो इन आदर्शों के विपरीत ही व्यवहार करते हैं। सम्भवतः इसलिये कि रामायण और महाभारत के सन्देश में एक विरोधाभास सा प्रतीत होता है। मैं श्रीराम को अपना आदर्श मानूँ या श्रीकृष्ण को, यही मन में सबसे बड़ी दुविधा है और शायद इसी दुविधा में हम उनके आदर्शों को गोली मार केवल उनकी मूर्तियों की सजावट में ही लगे रहते हैं।

रामायण को देखें तो भाई-भाई के लिए त्याग कर रहा है। राम ने हँसते-हँसते राजपाठ भरत के लिए छोड़ दिया और भरत भी वह राजपाट राम से लेने को तैयार नहीं। भातृप्रेम का इससे अच्छा उदाहरण नहीं मिलता। दूसरी ओर महाभारत में भाई-भाई राज्य के लिए लड़ रहे हैं और जब अर्जुन रण में अपने भाइयों को देख विचलित होकर शस्त्र-त्याग कर देता है तो श्री कृष्ण गीता के प्रसिद्ध उपदेश में उसे अपने भाइयों को मारने के लिये हथियार उठाने के लिये प्रेरित करते हैं। विचित्र दुविधा है! मैं किसको ठीक मानूँ? परन्तु यदि हम ध्यान से देखें तो दोनों के आदर्शों में कोई अन्तर है ही नहीं। दोनों ही स्वार्थ से ऊपर उठकर, परमार्थ में निष्काम कर्म करने के उपदेश दे रहे हैं। क्षत्रिय का परम कर्तव्य है प्रजा की सुरक्षा व उसका पालन। श्रीराम ने देखा कि भरत धर्मात्मा भी हैं और विद्वान् भी। वह प्रजा का पालन बहुत कुशलता से करने में सक्षम हैं। इसी कारण श्रीराम को भरत को राजा बनाने में कोई आपत्ति नहीं है । यही भाव भरत के हृदय में भी है। वह मानते हैं कि श्रीराम प्रजा का पालन और भी अच्छा करेंगे और इसलिए वह श्रीराम को ही राजा बनाने के लिए उत्सुक हैं। दूसरी ओर महाभारत का दुर्योधन दुष्ट प्रवृत्ति का है, अहंकारी है और अपने अहंकार के वश अपनी भाभी द्रोपदी के चीरहरण से भी बाज नहीं आता। ऐसे दुष्ट के राज्य में प्रजा कष्ट ही सहेगी। इसीलिये श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सब आततायियों को मारने का उपदेश दिया, और उनको भी जो आततायियों का साथ दे रहे थे।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।।

गीता के तीसरे अध्याय के इस श्लोक से स्पष्ट है कि हमें अपने सब कर्म यज्ञ की भावना से ही करने चाहिएँ। जैसे ही हम स्वार्थ से ऊपर उठ परमार्थ में कर्म करते हैं तो हमारे सभी कर्म ही भगवान् की पूजा बन जाते हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण के सन्देश का भेद मिट जाता है और दुविधा समाप्त हो जाती है।

न्यूजर्सी, अमेरिका

पढ़ाने में लाड़न नहीं करना योग्य है!

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते हैं, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें। (स. प्र. स. २)

आर्यजगत् के समाचार

१. वार्षिकोत्सव का आयोजन- आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय नर्मदापुरम् होशंगाबाद, म.प्र. का १०८वाँ वार्षिकोत्सव दि. ६ से ८ दिसम्बर २०१९ को भव्यतापूर्वक आयोजित किया जा रहा है। इस समारोह में देश के ख्यातनाम संन्यासी, विद्वान् व नेतागण पधार रहे हैं। आप सभी गुरुकुल हितैषी धर्मप्रेमी सज्जन इष्ट मित्रों सहित सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं। **सम्पर्क**- **०९९०७०५६७२६**

२. वार्षिक महोत्सव का आयोजन- गुरुकुल हरिपुर का दशम वार्षिक महोत्सव दि. २८ से ३० दिसम्बर २०१९ को मनाया जायेगा। आप सभी भाई-बहनों से निवेदन है कि गुरुकुलीय उत्सवीय अवसर पर अवश्य पधारें। **सम्पर्क**- **०६३७११८८५९३**

३. हिन्दी समारोह मनाया- गत वर्षों की तरह केरल हिन्दी प्रचार सभा ने इस वर्ष भी १४ सितम्बर से १४ अक्टूबर २०१९ तक राज्य स्तरीय हिन्दी माह समारोह मनाया। समारोह के सभी कार्यक्रमों में कर्मचारियों, छात्रों, अध्यापकों और हिन्दी प्रेमियों ने अत्यन्त उत्साह से भाग लिया।

४. भजन गायन प्रतियोगिता- आर्यसमाज शक्तिनगर, अमृतसर में ०३ नवम्बर २०१९ को बच्चों के स्तर की वैदिक भजन गायन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में अमृतसर जिले के आर्यसमाजी तथा डी.ए.वी. शिक्षण संस्थानों के कुल १८ बच्चों ने भाग लिया। प्रतियोगिता में मास्टर सोहान भारद्वाज ने प्रथम, मा. सूजल मनन ने द्वितीय और मा. अक्षित अरोड़ा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। तीनों प्रतियोगियों को ११००/ ७००/- और ५००/- रु. का नकद पुरस्कार व स्मृति चिह्नों द्वारा सम्मानित किया गया। शेष बच्चों को २००/- रु. नकद तथा एक-एक पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का संचालन उपमन्त्री श्री मुकेश आनन्द ने किया।

५. गुरुकुल महोत्सव सम्पन्न- श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् द्वारा गुरुकुल-पौन्धा देहरादून में ८ से १० नवम्बर २०१९ तक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में अखिल भारतीय-गुरुकुलमहोत्सव का विभिन्न कार्यक्रमों के साथ भव्य आयोजन किया गया। इस महोत्सव में गुरुकुलीय शास्त्रीय प्रतिस्पर्धा, अखिल भारतीय वेदांग शोध संगोष्ठी, विद्वत्सम्मान-समारोह, वैदिक सिद्धान्त परीक्षा-उपाधि वितरण समारोह, अखिल भारतीय गुरुकुलीय-अधिवेशन तथा अखिल भारतीय कबड्डी प्रतिस्पर्धा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। शास्त्रीय प्रतिस्पर्धाओं में 'वैदिक सिद्धान्त प्रश्न मंच, अष्टाध्यायी-कण्ठ-पाठ-लेखन, धातुपाठ कण्ठ-पाठ-लेखन, श्रीमद् भगवद्गीता कण्ठ-पाठ-लेखन प्रतिस्पर्धा, त्रिभाषी कोष कण्ठ-पाठ, वेदभाष्य भाषण प्रतिस्पर्धा, शलाका परीक्षा, शास्त्रार्थ विचार, वेद मन्त्रान्त्याक्षरी, अक्षर श्लोकी, समस्यापूर्ति' विषयों पर प्रतिस्पर्धा हुई। विजयी प्रतिभागियों को पुरस्कार राशी से सम्मानित किया गया।

चुनाव समाचार

६. जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा, जि. नागौर का चुनाव सम्पन्न हुआ, जिसमें सर्वसम्मति से **प्रधान**- श्री किशनाराम आर्य-बिल्लू, **मन्त्री**- श्री यशमुनि आर्य-परबतसर, **कोषाध्यक्ष**- श्री गजेन्द्र परिहार आर्य-कुचेरा को चुना गया।

शोक समाचार

७. आर्यसमाज कांकरिया, अहमदाबाद के संन्यासी **स्वामी शारदानन्द सरस्वती** का २९ सितम्बर २०१९ को देहावसान हो गया। आर्यसमाज के सदस्यों श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल, श्री जयदेव आर्य, श्री भरतभाई अग्रवाल आदि ने आपकी अत्यन्त निष्ठा से सेवा की। आपका अन्तिम संस्कार आर्यसमाज द्वारा पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ।

८. वानप्रस्थी यशमुनि, परबतसर की पोती **सुश्री खुशी बागड़ा** पुत्री श्री विनोद बागड़ा अधिवक्ता का देहावसान दि. २४ अक्टूबर २०१९ को हृदयरोग के कारण हो गया। शोकाकुल परिवार ने ईश्वर की प्रेरणा से सुश्री खुशी बागड़ा के नेत्रों का दान आई बैंक सोसायटी ऑफ राज. अजमेर को करके परोपकार का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

९. आर्यसमाज अजमेर के वरिष्ठ उपप्रधान श्री नवीन मिश्रा की धर्मपत्नी **श्रीमती सुमन मिश्रा** का देहान्त दिनांक ४ नवम्बर २०१९ को ५६ वर्ष की आयु में हो गया। श्रीमती सुमन मिश्रा एक धार्मिक व सामाजिक कार्यों में सक्रिय रहने वाली महिला थीं।

१०. अजमेर व आर्यजगत् के वैदिक विद्वान् व लेखक श्री बद्रीप्रसाद पंचोली की धर्मपत्नी **श्रीमती कमला देवी पंचोली** का देहावसान दिनांक २ अक्टूबर २०१९ को वर्ष की आयु में हो गया। श्रीमती पंचोली दानशीला, सात्त्विक प्रवृत्ति की विदुषी व धार्मिक महिला थीं।

परोपकारिणी सभा दिवंगतात्मा को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए प्रभु से प्रार्थना करती है कि वह शोकाकुल परिवार को धैर्य व सामर्थ्य प्रदान करे।

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ६ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	५१०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,००,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -**संपादक**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ अक्टूबर २०१९ तक)

१. श्रीमती भँवरी देवी, अजमेर २. श्रीमती सीता देवी वर्मा, अजमेर ३. श्री लक्ष्मण मुनि आर्य, अजमेर ४. श्री अनुपम आर्य, जयपुर ५. श्री मुन्नालाल भूतड़ा, भिवाड़ी ६. डॉ. पुष्पा विसेन, दिल्ली ७. श्री मुकेश कुमार, नई दिल्ली ८. श्री विशाल तँवर, नई दिल्ली ९. श्री अनिल कुमार तोमर, नई दिल्ली १०. श्रीमती पारुल तँवर व श्री वैभव चौहान, नई दिल्ली ११. श्रीमती पुष्पा नासा, नई दिल्ली १२. श्री रमेशचन्द आर्य एवं श्रीमती रेखा आर्या, नई दिल्ली १३. श्री जय भगवान, नई दिल्ली १४. श्री सन्त कुमार तोमर, नई दिल्ली १५. श्री सन्तोष मदान, नई दिल्ली १६. श्री शाश्वत गौरव रस्तोगी, नई दिल्ली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३१ अक्टूबर २०१९ तक)

१. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु २. श्री हरसहाय सिंह गंगवार, बरेली ३. श्री दीपक शर्मा, अजमेर ४. श्री गोरधन खण्डेलवाल, अजमेर ५. श्री श्याम गर्ग, अजमेर ६. श्री सुमनसिंह, अजमेर ७. श्री अमरचन्द माहेश्वरी, अजमेर ८. श्री जयसिंह, बाड़मेर ९. श्री ओमप्रकाश, अजमेर १०. श्री बाबूलाल शर्मा, दिल्ली ११. श्री आदुराम आर्य, पाली १२. श्रीमती शारदा मीणा, दिल्ली।

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (स.प्र.स. ३)

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं। (व्य. भा.)

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(आ. स. नियम)